हिवि
6

…य जगत्

सर्व सेवा संघ पुस्तकालय
क्रमांक 2973

हिवि
6
2973

अ. भा. सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

जय जगत्

लेखक

विनोबा

भूमिका

आचार्य दादा धर्माधिकारी

सर्व
पुस्तक क्रमांक...29

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

रा ज घा ट, का शी

प्रकाशक :
मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ,
राजघाट, काशी

●

पहली बार : सितम्बर १९५८ : ५,०००
दूसरी बार : जनवरी १९५९ : ५,०००
तीसरी बार : फरवरी १९६० : ५,०००
कुल छपी प्रतियाँ : १५,०००
मूल्य : पचास नये पैसे (आठ आना)

●

मुद्रक :
पं० पृथ्वीनाथ भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस, मायघाट, वाराणसी

भू मि का

भगवान् शंकराचार्य के देवीस्तोत्र में अंतिम श्लोक आता है :

'माता च पार्वती देवी पिता देवो महेश्वरः ।
बान्धवाः शिवभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम् ॥'

भारत के धर्मनिष्ठ लोगों में अति प्राचीन काल से इस श्लोक में निहित भावना के बीज बोये गये हैं। आगे चलकर सारी सांस्कृतिक प्रवृत्तियों ने इसी बीज को सींच-सींचकर उसका संवर्धन किया है। भारतीय संत-साहित्य में सर्वत्र इस भावना का प्रकर्ष दिखाई देता है। संत की भाषा कोई भी हो, लेकिन उसकी भावना विश्वव्यापी ही रही। संत तुकाराम महाराज महाराष्ट्र के एक हिस्से में ही जनमे और रहे। वे पढ़े-लिखे लोगों की मँजी हुई मराठी नहीं जानते थे, फिर भी उन्होंने यही गाया : 'हम विष्णुदास, हमारा भुवनत्रय में निवास।' गोस्वामी श्री तुलसीदासजी संस्कृत और हिन्दी के सिवा शायद ही कोई दूसरी भाषा जानते हों, लेकिन उनकी भी भावना यही रही, 'जड़ चेतन जग जीव जत, सबहिं राममय जानि।' इस प्रकार के कई अवतरण दूसरे संतों के वचनों से भी दिये जा सकते हैं। तात्पर्य यह कि भारतवर्ष में सांस्कृतिक भावना मानव्यव्यापी रही, जिसमें साम्प्रदायिक, भौगोलिक, भाषिक या जातीय संकीर्णता के लिए कभी कोई अवसर नहीं रहा। केवल भौतिक नागरिकता की भावना अति प्राचीन काल में कम-से-कम भारतवर्ष में नहीं थी। दूसरे देशों में भी रही हो, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

यूरोप में जब अर्वाचीन राष्ट्रवाद का उदय हुआ, तब से भौगोलिक, भाषिक और जातीय पृथक्ता या अलगाव की भावनाओं ने जोर पकड़ा और उसने व्यावर्तक राष्ट्रवाद का रूप ले लिया। व्यावर्तक से मतलब है, अपने में दूसरे को शामिल न करना। यह स्वाभाविक ही था कि इसमें से क्षुद्र अहंता पैदा हो। इस राष्ट्रीय अहंवाद से ही जागतिक व्यापारवाद और साम्राज्यवाद का जन्म हुआ, जिससे आज भी धरती माता उत्पीड़ित है।

राष्ट्रवाद एक चीज है, राष्ट्रधर्म बिलकुल अलग चीज है। 'वाद' में परहेज की बू आती है। वह उद्दण्ड और आक्रमणशील होता है। 'धर्म' में

सख्य और सौहार्द की सौम्य सुगन्ध होती है। वह सबको जोड़ता है, तोड़ता किसीको नहीं। मनुष्यमात्र को जुटाता है, छाँटता किसीको नहीं। इस दिव्य राष्ट्र-धर्म का उद्‌गायन आधुनिक भारतीय मानव के वैतालिक जगद्‌विख्यात कवि तथा राष्ट्र के गुरुदेव रवि ठाकुर ने किया है। उनकी स्वदेशी में किसी देश का बहिष्कार नहीं था, किसी वर्ण, सम्प्रदाय, पंथ या धर्म-मत से परहेज नहीं था। इसलिए भारतीय राष्ट्र-धर्म व्यापक मानव-धर्म के हमेशा अनुकूल रहा। इस विश्व-धर्म में और आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीयता में मूलभूत अन्तर है। अन्तर्राष्ट्रीयता में भिन्न-भिन्न राष्ट्रों का समन्वय है। व्यापक मानव-धर्म या विश्व-धर्म में सभी देशों के नागरिक संसार के नागरिक बनने के बदले निरुपाधिक मानव में परिणत हो जाते हैं, यही विनोबा का 'विश्व-मानव' है।

व्यापारवादियों और साम्राज्यवादियों की तरह दुनिया के साहसी प्रवासियों ने भी 'एक जगत्' (One World) की कल्पना, भावना और खोज की। जूल्सवर्न ने अपनी 'अस्सी दिन में पृथ्वी-परिक्रमा' नामक पुस्तक में अखिल जगत् का स्वप्न देखा, तब से लेकर वेन्डेलविल्की की 'एक जगत्' (One World) तक मनुष्य की एक आकांक्षा और साधना रही। व्यापारियों और सम्राटों ने तथा अन्य साम्राज्यवादियों ने सिकन्दर और सीजर, मुसोलिनी और हिटलर की तरह इस भू-माता को पादाक्रान्त करने और उसे अपनी भोग-दासी बनाने की दुष्ट वासना रखी; लेकिन कालचक्र की गति से साम्राज्यवाद और व्यापारवाद क्षीण होता गया और विल्की की तरह अब दुनियाभर के साधारण मनुष्य यह महसूस करने लगे कि अब या तो जगत् 'एक जगत्' बनकर रहेगा या फिर काल के विकराल उदर में लुप्त हो जायगा। इसका अर्थ यह है कि राष्ट्र-धर्म यदि मानव-धर्म से पुनीत और परिष्कृत होगा, तभी वह ठहरेगा; नहीं तो जागतिक व्यापारवाद और साम्राज्यवाद की तरह वह भी नामशेष हो जायगा।

संसार की आज परिस्थिति राष्ट्र वाद के सर्वथा प्रतिकूल है। विविक्त राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और निरपेक्ष राष्ट्रीय प्रतिरक्षण, जो कि राष्ट्रवाद के

आवश्यक लक्षण माने जाते थे, आज भूतकाल की चीजें हो गयी हैं। प्रतिरक्षण के लिए राष्ट्रों के यूथ या गिरोह बन गये हैं और अन्ततोगत्वा सारा जगत् दो परस्परविरोधी वादों के शिविरों में बँट गया है।

भारत की सांस्कृतिक परम्परा आधुनिक समय में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को विकास और संसार की वर्तमान परिस्थिति सभी की दृष्टि से एक मानव्य-व्यापी संबोधन की आवश्यकता विनोबा को प्रतीत हुई, परिणाम 'जय जगत्' का अभिवादन-संकल्प है। इसमें 'जय हिन्द' अंतर्भूत है। 'जय हिन्द' अपने में वस्तुतः 'जय जगत्' का ही पर्याय हो सकता है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक और द्वारका से सदिया तल फैले हुए इस विराट् देश में जितनी विविधताएँ हैं, उन सबका समावेश जिस परस्पराभिवादन के संकेत में होता है, वह 'जय हिन्द' का सम्बोधन 'नमोनारायण' सम्बोधन से कम दिव्य या कम व्यापक नहीं है, परन्तु भगवद्गीता के कर्मयोग की तरह भारत के लोगों को अपनी परम्परा का विस्मरण हो गया, इसलिए 'वन्दे मातरम्' और 'जय हिन्द' की जगह विनोबा को 'जय जगत्' से अभिवादन करने की प्रेरणा हुई। उसमें 'जय हिन्द' का निषेध नहीं, समावेश है।

भावना और संकल्प विश्वव्यापी, परन्तु आचरण क्षुद्र संकीर्ण भेदों से प्रेरित, यह भारतीय मानव का विशिष्ट स्वभाव-दोष रहा है। वह स्वभाव-दोष 'जय जगत्' को भी क्षुद्र क्षेत्रवाद से संकीर्ण, जातिवाद से तथा व्यावर्तक संप्रदायवाद से नष्ट-भ्रष्ट कर सकता है। सम्बोधन में शक्ति नारेबाजी से नहीं आती, अन्तःकरण के प्रत्यय से और निष्ठायुक्त अनुष्ठान से आती है। भारत के आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक जीवन में 'जय जगत्' का तत्त्व प्रत्यक्ष रूप से यदि अभिव्यक्त होगा, तो 'जय जगत्' का सम्बोधन उदात्त मानवीय भावना का प्रवर्तक सिद्ध होगा, अन्यथा हमारे दूसरे सारे उद्घोषों की तरह वह भी एक खोखला पाखण्ड मात्र रह जायगा।

काशी

१८-८-'५८

—बाबा धर्माधिकारी

अनुक्रम

१.	भारत की अन्तर्राष्ट्रीयता	...	...	७
२.	यूरोप और भारत में अन्तर	...	...	१५
३.	विश्व-मानवता की अनिवार्यता	...	...	२३
४.	विज्ञान की प्रेरणा	...	...	२५
५.	वसुधैव कुटुम्बकम्	...	...	२८
६.	विश्व-मानुष बनिये	...	...	३४
७.	विश्वात्मा की अनुभूति	...	...	३८
८.	बुद्धि के साथ हृदय भी विशाल करें	...	...	४१
९.	ग्राम-पंचायत और विश्व-पंचायत	...	...	४५
१०.	हमेशा का नारा 'जय जगत्'	...	...	५१
११.	मैत्री : समाज-रचना का आधार	...	...	५३
१२.	पंचशील : भारत के लिए नया नहीं	...	...	५७
१३.	विश्व-नागरिकता	...	...	६२
१४.	जागतिक आन्दोलन	...	...	६४
१५.	'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः'	...	...	६७
१६.	हिन्दुस्तान : एक दुनिया	....	....	७२
१७.	सारी दुनिया को सर्वोदय कबूल	....	...	७६
१८.	'जय जगत्' और भारत-प्रेम अविरुद्ध	....	....	७९
१९.	हिन्दुस्तान की संस्कृति : शान्ति	....	...	८१

●

भारत की अन्तर्राष्ट्रीयता : १ :

'जय जगत्' मंत्र भारत की हवा के अनुकूल है। यहाँ जो पाश्चात्य शिक्षा आयी, उसके फलस्वरूप कुछ विषयों में हम लोगों के विचार व्यापक हुए, तो कुछ विषयों में संकुचित। इस शिक्षा से हमारे देश में 'राष्ट्रवाद' नामक एक नया ही पदार्थ आया और बड़ी धूमधाम से आया। इस नारे के साथ वह यहाँ आया कि 'हमारे देश में देशाभिमान नहीं था।' इस बारे में रविबाबू ने लिखा है कि "हमारे देश में यह जो नया पदार्थ लाया गया है, वह सर्वथा निर्दोष नहीं है। उसमें दोष भी हैं।"

भारतीय संस्कृति का परिणाम

भारत अन्तर्राष्ट्रीय राष्ट्र है। यह कोई आज की घटना नहीं, यह इस देश की संस्कृति का ही परिणाम है। ढाई हजार साल का इतिहास इसका साक्षी है। रामेश्वरम् से कैलाश तक अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। उनमें तमिल सबसे पुरानी लगभग २ हजार साल की भाषा है। उसका व्याकरण ही १८ सौ बरस पुराना है। मराठी भाषा में दादोबा पांडुरंग से पहले व्याकरण नहीं था। अन्य भाषाओं का भी यही हाल है। इतनी समर्थ भाषाओं का यह भारत एक देश माना गया। रामेश्वरम् में रामचन्द्रजी ने लिंग की स्थापना की, ऐसी कथा है। आज भी उत्तर हिंदुस्तान के असंख्य यात्री रामेश्वरम्

के दर्शन को जाते हैं। यह जो भारतीय एकता हम लोगों ने मानी है, वह कोई मामूली बात नहीं है। पहले भी इस देश में अनेक भेद थे, रीति-रिवाजों में भी भिन्नता थी। फिर भी हम लोगों ने इस देश को एक माना और एक अन्तर्राष्ट्रीय राष्ट्र बनाया। यूरोप को अभी यह बात नहीं सधी है।

हिंदुस्तान में पहले झगड़े नहीं थे, ऐसी बात नहीं। फिर अंग्रेजी सरकार ने तो यह योजना ही बनायी थी कि भारत में एक सत्ता न रहे। उनके यहाँ से जाते समय हिन्दू, मुसलमान और पाँच-छह सौ राजा-महाराजाओं को भी अलग रहने की स्वतंत्रता दी गयी। अगर हिंदुस्तान के राजा-महाराजा अलग रहने का तय करते, तो खून की नदियाँ बहतीं और अनेक विदेशी शक्तियों को यहाँ पैर जमाने का मौका मिलता। लेकिन हमारे देश के कूटनीतिज्ञों ने राजा-महाराजाओं से बात की। वे थोड़े में ही समझ गये और उन्होंने अपना-अपना राज्य विलीन करना तय कर लिया।

लेकिन इन राजा-महाराजाओं को यह समझदारी कहाँ से मिली? वह तो हिंदुस्तान की हवा में ही थी। नहीं तो अंग्रेजों की ओर से उनके राजकुमारों को पूरी तरह अंग्रेजी संस्कृति में ही रँगने और साधारण जनता से दूर रखने का ही सुनियोजित प्रयत्न जारी था।

श्री अरविन्द, महात्मा गांधी, नेहरू आदि ने इंग्लैंड जाकर शिक्षा पायी, फिर भी उनमें से यहाँ की संस्कृति लुप्त नहीं हुई, बल्कि वह उफान बनकर ऊपर आयी और उन्होंने भारतीय संस्कृति का पोषक बहुत अधिक वाङ्मय तैयार किया।

भारत एक राष्ट्र

'भाषा-भेद, जाति-भेद आदि अनेक भेद होकर भी भारत एक राष्ट्र है।'—यह भावना हमारे पूर्वजों ने हमारे चित्त में भली-भाँति बैठा दी है। इसके लिए उन्होंने जैसा पक्का प्रबंध किया है, उसे देखकर आश्चर्य होता है। तमिलनाड, कर्नाटक या महाराष्ट्र का मनुष्य स्नान के लिए कावेरी, तुंगभद्रा या गोदावरी पर जाता है, तो भी कहता है कि "मैं गंगा-स्नान के लिए जाता हूँ।" ज्ञानदेव ने कहा है कि "भागीरथ की तरह गौतम के लिए भी भगवान् ने गंगा भेजी।" गौतम की गंगा गोदावरी है, यह सभी जानते हैं। वे बार-बार गोदावरी का ही दृष्टांत देते थे। लेकिन उनका उल्लेख इतना ही नहीं हिंदुस्तान में कहीं भी कोई पाइप के पानी से भी नहाता है, तो जिस बर्तन में नहाने का पानी लेता है, उसे वह 'गंगाल' ही कहता है। गंगाल याने 'गंगालय'। वह उसे गंगा का पानी समझकर ही नहाता है।

भारत में ऐसा कोई संत मिलना कठिन है, जो काशी न हो आया हो या कम-से-कम काशी जाने के लिए तड़प न रहा हो। सन् १९१६ में और फिर सन् १९५२ में मैं सवा दो महीने तक काशी में था। तब मैंने देखा कि तमिलनाड, कर्नाटक, गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल आदि हिंदुस्तान के सभी प्रदेशों के संत कभी-न-कभी काशी आ चुके हैं। काशीवाले दिखलाते हैं कि तुलसीदास यहाँ रहते थे, एकनाथ यहाँ रहते थे। कबीर, शंकर, रामानुज, चैतन्य, दक्षिण के माणिक्यवाचकर आदि सभी संत काशी हो आये। उन्होंने काशी को एक 'सांस्कृतिक केन्द्र' बनाया। तुलसीदास ने कहा है—

"विश्व विकाशी काशी"। याने सारे विश्व को विकसित करनेवाली, सारे विश्व को प्रकाश देनेवाली काशी प्रकाशी नगरी है। इस तरह सारे भारत की संस्कृति एक बनाने की हमारे पूर्वजों ने मानो रट ही लगा दी थी।

संकुचित नारा लगाना अनुचित

यही कारण है कि हिन्दुस्थान में पहले से ही अन्तर्राष्ट्रीयता पैदा हुई। लेकिन बाद में राष्ट्राभिमान की जो बात आयी, वह कम दर्जे की थी। उसके आने पर वृत्ति संकुचित बन गयी और प्रांताभिमान आने लगा। फलतः सारी संस्कृति में जो बातें कभी सुनाई नहीं पड़ी थीं, वे सुनाई पड़ने लगीं। 'आंध्र माता की जय', 'कर्नाटक माता की जय' कही जाने लगी। पहले सारा भारत एक था, लेकिन आज के विज्ञान-युग में, जब कि सारा विश्व निकट आना चाहता है, ये छोटी-छोटी माताएँ पैदा हो गयीं। सवाल है कि उन्हें सँभाल कैसे पायेंगे? ये हमें मध्य-युग में ले जायँगी और हिंदुस्तान की सभ्यता से हमें वंचित करेंगी।

हमें अखिल विश्व के विचार की ओर जाना है। यह 'अखिल विश्व-मानव-वृत्ति' हमारी सांस्कृतिक देन है।

संकीर्ण वृत्ति को मिटाने के लिए यहाँ कम प्रयत्न नहीं हुए। इसी अन्तर्राष्ट्रीयता को नष्ट करने के लिए अंग्रेज यहाँ से जाते-जाते देश के टुकड़े करके गये। देशी नरेशों को फोड़ने का यत्न किया, पर उसमें वे विफल हुए और भारत की संस्कृति सफल हुई। इसके सिवा उन्होंने 'दक्षिण विरुद्ध उत्तर' याने 'आर्य विरुद्ध द्रविड़' ऐसा भेद डालने का तीसरा प्रयत्न किया। 'हिन्दू विरुद्ध मुसलमान'

बनाकर उनके चीर-फाड़ का सुनियोजित यत्न तो किया ही, उसके अनुकूल इतिहास लिखा, वैसी ही शिक्षा दी और राजनीति भी उसी ढाँचे में ढाली। अंग्रेजों ने अपनी सेना में भी दो विभाग कर दिये—नार्दर्न डिवीजन और सदर्न डिवीजन। दक्षिण में कहीं दंगा-फसाद होने पर उत्तर-विभागीय सेना भेज उसका दमन करते और उत्तर में विप्लव होने पर दक्षिण की सेना से काम लेते थे। १८०६ की वेलूर की क्रांति में उन्होंने गुरखा और सिख पलटनों से उसे दबाने में मदद ली, तो १८५७ की क्रांति में दक्षिण की पलटनों से काम लिया। इस सुव्यवस्थित योजना को चूर-चूर करने के लिए गांधीजी ने राष्ट्र-भाषा हिंदी का प्रयोग किया और दक्षिण में हिंदी-प्रचार किया। आज भी वहाँ मुट्ठीभर जनता में अंग्रेजों द्वारा बोये हुए कुछ विष-बीज बने हैं। मुझे विश्वास है कि वे भी मिट जायँगे, क्योंकि वे भारतीय संस्कृति में नहीं हैं और उन्हें बढ़ावा देनेवाली राज्य-सत्ता भी अब यहाँ नहीं है।

नये राष्ट्राभिमान का दुष्परिणाम

भारत की एकता को खंडित करने के विदेशियों ने जो अनेक प्रयत्न किये, उन्हें तो हमने विफल कर दिया, लेकिन आज हम लोगों द्वारा ही भारतीय एकता पर प्रहार करने के प्रयत्न हो रहे हैं। यह बड़े खेद की बात है। यों देखा जाय, तो भाषावार प्रांत-रचना बुरी नहीं। भाषावार प्रांत बनने पर लोकभाषा में कारोबार चलता है। उसके बिना 'स्वराज्य' का अर्थ ही ध्यान में नहीं आ सकता। पर उसके लिए इतना दंगा-फसाद, सिर-फुड़ौवल क्यों? यह भारतीय एकता के लिए सर्वथा घातक है। हर भाषा का उत्तम विकास होना चाहिए,

उसे उपयुक्त स्थान मिलना चाहिए, यह ठीक है। लेकिन उसके लिए जिन संकुचित साधनों का हिन्दुस्तानभर में उपयोग किया गया, वे हमें बहुत खतरनाक दीख रहे हैं। यह सब नये 'राष्ट्राभिमान' का दुष्परिणाम है। उससे 'विश्व-राष्ट्रीयता' का भाव कम हुआ।

कहा जाता है कि पढ़े-लिखे लोगों में लोक-जाग्रति हुई है। पर वस्तुतः तो वे ही अधिक संकुचित दीखते हैं। अंग्रेजी भाषा दुनियाभर में फैली है। इसलिए यह अपेक्षा की जाती है कि उससे उदारता आयेगी। लेकिन प्रत्यक्ष में परिणाम कुछ और ही दीखते हैं। उससे छोटे-छोटे अभिमान बढ़ने लगे हैं और देश को खतरा पैदा हो गया है। किन्तु हमारी संस्कृति में इसके विरुद्ध बहुत बड़ा आधार है। इसमें यह संकुचितता टिक न पायेगी। इसके लिए हमें अखिल भारतीय सेवकत्व का निर्माण करना चाहिए।

अखिल भारतीय सेवकत्व कैसे निर्माण हो, आज यह बहुत बड़ी समस्या है। क्या आज कर्नाटक का सेवक महाराष्ट्र में या महाराष्ट्र का एकाध सेवक तमिलनाड में जाकर काम करेगा? पचास वर्ष पूर्व ऐसी स्थिति नहीं थी। क्या कोई कह सकता है कि लोकमान्य तिलक महाराष्ट्रीय थे? अभी-अभी उनका शताब्दी-महोत्सव जितने आदर और उत्साह के साथ महाराष्ट्र में हुआ, उससे लेशमात्र भी कम आदर और उत्साह से तमिलनाड में नहीं हुआ। अब प्रश्न है कि ऐसे अखिल भारतीय नेता या सेवक कैसे पैदा हों?

संतों की अखिल भारतीयत्व की परम्परा

शंकराचार्य अखिल भारतीय सेवक हो गये हैं। उनकी मातृ-भाषा मलयालम थी। अगर वे उसी भाषा में लिखते, तो अखिल

भारतीय सेवक न बनते। उन्होंने तत्कालीन राष्ट्रभाषा संस्कृत में ही अपने सारे ग्रन्थ लिखे। भारत में ऐसे एक ही दो सेवक नहीं हुए, अनेक संत ऐसे निकले और वे देशभर घूमे। चैतन्य महाप्रभु पंढरपुर आये थे। उनके संप्रदाय के लोग महाराष्ट्र में घूमते रहे, यह स्पष्ट है। वल्लभाचार्य मूलतः आंध्र के थे, पर उनका प्रभाव गुजरात और राजस्थान में विशेष था। प्रसिद्ध हिंदीभक्त कवि सूरदास उन्हींके चेले थे। हिंदी-साहित्य पर वल्लभाचार्य का कितना प्रभाव पड़ा! ऐसे अनेक संत-पुरुष उन दिनों सारे भारत में घूमते और अखिल भारतीयत्व को बनाये रखते थे।

नामदेव का जितना आदर महाराष्ट्र में है, पंजाब में उससे कम नहीं है। वे १५ वर्ष पंजाब में रहे। ज्ञानदेव के बाद नामदेव ५० साल जीवित रहे और उन्होंने हिंदुस्तानभर में प्रचार किया। मोरोपंत ने नामदेव के बारे में कहा है—"**ज्याने प्रसिद्ध केलें विट्ठल, हे भव्य नांव देवाचें।**" याने नामदेव ने भगवान् के 'विट्ठल' नाम का प्रचार किया। राजस्थान की मीराबाई कहती है—"**विट्ठल वर ने वरी।**" उसने **विट्ठल** विषयक अनेक पद बनाये हैं। गुजरात में भी नामदेव के कारण ही 'विट्ठल' नाम प्रसिद्ध हुआ। नामदेव नानक के पहले हुए हैं। उनके बनाये ७०-८० हिंदी भजन सिखों के धर्म-ग्रन्थ 'ग्रंथ साहब' में मिलते हैं—'**विट्ठल इत्थे, विट्ठल उत्थे, विट्ठल बिन संसार नहीं।**' यह भजन पंजाब में घर-घर गाया जाता है। यह कोई साधारण घटना नहीं।

समर्थ रामदास ने तंजावर (मद्रास) में मठ स्थापित किया और वहाँ अपना एक शिष्य भेजा। उसके हाथ में भिक्षा की झोली और 'दासबोध' की एक पोथी देकर उसे सारे मद्रास प्रांत की सेवा

करने के लिए भेजा। भगवद्भक्ति में लीन अनेक संत और आचार्य दक्षिण में हो गये हैं। इसीलिए संस्कृत में कहा जाता है कि 'द्रविड़ देश में भक्तिरूपी कन्या ने जन्म लिया है।' ऐसे प्रदेश में रामदास ने भी अपने शिष्य को भेजा और उसने तंजावर में अपना आश्रम स्थापित किया है, जो आज भी आदर का पात्र बना हुआ है।

हमें अखिल मानवत्व वांछनीय

हमारे पूर्वजों में इतनी अधिक अखिल भारतीय वृत्ति थी! मजे की बात तो यह है कि विज्ञान के कारण यातायात के साधन बढ़ने के बावजूद अखिल भारतीय सेवकत्व लुप्त होने जा रहा है। हम लोग '**अंगुष्ठोदकमात्रेण शफरी फर्फरायते**'—अँगूठेभर पानी में मछली की तरह फर-फर करने लगे हैं। इससे भारतीय गौरव टिक नहीं सकता और अखिल विश्व को एक करने का जो काम हम लोगों के जिम्मे है, उसे हम पूरा नहीं कर पायेंगे। अपने पूर्वजों की यह कमाई खोने से कैसे काम चलेगा? आज नन्हें-नन्हें बच्चे भी 'जय जगत्' कहने लगे हैं। हमें अखिल भारतीय सेवकत्व को देखना और बढ़ाना चाहिए और अखिल मानवत्व लाना चाहिए।

साबडांग (रत्नागिरी)
१२-४-'५८

यूरोप और भारत में अन्तर : २ :

यूरोप में दो-चार करोड़ की आबादीवाले छोटे-छोटे राष्ट्र हैं। फ्रांस और जर्मनी अलग-अलग राष्ट्र हैं, ऐसा उन्होंने मान रखा है। फ्रेंच और जर्मन लोग एक-दूसरे की भाषा १५ दिनों में सीख सकते हैं, उनकी लिपि भी एक ही है और उन देशों के बीच भगवान् ने कोई पहाड़ नहीं खड़ा किया है। पर भगवान् की इस गलती को दुरुस्त करने के लिए एक ने 'मैजिनो लाइन' बनायी और दूसरे ने 'सिगफ्रिड लाइन'। उन देशों के बीच जो लड़ाइयाँ चलती हैं, वे 'राष्ट्रीय युद्ध' कहलाती हैं। लेकिन हमारे यहाँ भिन्न-भिन्न प्रांतों के बीच जो लड़ाइयाँ हुईं, उन्हें अंग्रेज इतिहासकारों ने भी 'गृहयुद्ध' माना। हमने भी यह माना है कि सारा भारत एक देश है। यूरोप को इस तरह एक देश बनने में न मालूम कितने साल लगेंगे। राजनीति में, समाज-शास्त्र में और नीति-शास्त्र में यूरोप बहुत पिछड़ा हुआ है।

यूरोपीय राष्ट्र टुकड़े करना जानते हैं

यूरोपवाले एक होना नहीं जानते। उन्होंने एक जर्मनी के दो जर्मनी बना दिये हैं। हिंदुस्तान के दो टुकड़े किये—हिन्दुस्तान और पाकिस्तान। कोरिया के भी दो टुकड़े किये। उनकी आदत ही हो गयी है, एक के दो बनाना, दो के चार बनाना। कोई कारण नहीं कि फ्रांस और जर्मनी स्वतंत्र राष्ट्र रहें, सिवा इसके कि उनकी भाषाएँ दो हैं।

लेकिन भाषाएँ तो हिंदुस्तान में भी कई हैं। यहाँ तो लिपियाँ भी कई हैं। किसी बंगाली को तमिल समझने के लिए सालभर अध्ययन करना पड़ेगा, फिर भी वह समझता है कि तमिलवाला उसका भाई है। क्या आज इंग्लैंड का कोई मनुष्य रूस में जमीन के मसले हल करने के लिए घूमता होगा, और यह कहता होगा कि भाइयो ! मैं तुम्हें बतलाऊँगा कि सर्वोदय कैसे होगा। उत्तर का विनोबा दो साल से दक्षिण में घूम रहा है। उसके हर व्याख्यान का अनुवाद करना पड़ता है। फिर भी दक्षिण के लोग समझते हैं कि यह अपना ही मनुष्य है। यूरोप में यह नहीं हो सकता।

भारत 'बहुरस' और 'एक राष्ट्र'

इंग्लैंड एकरस है, यह उसका वैभव नहीं है, न्यूनता है। हिंदुस्तान 'बहुरस' है। उसमें विविध भाषा, धर्म, रीतियाँ हैं। सब प्रकार का वैविध्य है। यह उसका विशेष वैभव है। हमने, हमारे पुरातन ऋषियों ने तय किया है कि हम सारे लोग मिलकर 'एक राष्ट्र' हैं। बाल्मीकि ने रामायण में लिखा है कि 'राष्ट्र की उत्तर सीमा में हिमालय और दक्षिण में समुद्र है।' इस तरह हिमालय से लेकर समुद्र तक सारे भारत को उन्होंने एक माना। उन दिनों यातायात के साधन भी नहीं थे। आज तो हवाई जहाज से छह घंटे में बँगलोर से दिल्ली जा सकते हैं। फिर भी उन्होंने सारे देश को एक माना। यहाँ एक संस्कार है और उसकी सफलता के लिए उन्होंने यात्रा की योजना बनायी। न तो दक्षिण भारत में देवालय कम हैं, न उत्तर भारत में तीर्थस्थान। लेकिन उत्तर भारतवाले के मन में यही वासना रहती है कि कब मैं गंगाजल से

रामेश्वरम् के भगवान् का अभिषेक करूँ और दक्षिण भारत के मनुष्य के मन में यह वासना रहती है कि कब मैं काशी जाकर समुद्र के जल से विश्वनाथ का अभिषेक करूँ। यों हमने प्रतिभा के आधार पर इतना विशाल देश एक बनाया।

भारतीय दर्शन का दोहरा विचार

भारतीय दर्शन का दोहरा विचार है—(१) सर्व में मैं हूँ। (२) मुझमें सर्व है। जो काम मेरा अपना काम माना जायगा, जैसे खाना, सोना आदि, उसे करते हुए भी मैं समाज के लिए कर रहा हूँ, याने मेरे इस काम से समाज-सेवा हो रही है; ऐसा मानना चाहिए। मेरे व्यक्तिगत कार्य में भी सारे समाज का अनुसंधान हो और सारे समाज की सेवा में मेरा लोप हो। इस तरह सर्वोदय का दोहरा विचार है। जैसे स्वार्थ का विचार व्यापक बन गया, उसकी शुद्धि हो गयी, वैसे ही साधना भी व्यापक बननी चाहिए और उसकी शुद्धि होनी चाहिए। स्वार्थ का छोटा विचार मिट जाय, व्यापक विचार आ जाय, तो सबके स्वार्थ की बात आती है। गाँव में चेचक की बीमारी आने पर कोई उससे अलग नहीं रह सकता। उसकी छूत सबको लगती है। 'जिसका कर्म, उसका फल' ऐसा हम अक्सर कहते हैं। परंतु क्या वास्तव में ऐसा होता है? कोई मूर्ख बीड़ी पीकर किसी घर पर फेंक दे, तो सारे गाँव में आग लग जाती है। उसमें किसका कर्म था और फल किसे मिला? एक लड़के का बुरा कर्म था और फल मिला सारे गाँव को। इसलिए जरा विचार की शुद्धि करें और सारे समूह में हम हैं, हममें सारा समूह है, यह पहचानें। एक मनुष्य ज्ञानी बनता है, तो उतने अंश में सारा समूह

ज्ञानवान् बनता है, ऊँचा उठता है । इसलिए व्यक्ति और समाज की भिन्न-भिन्न कल्पना गलत है । व्यक्तिगत कार्य सामाजिक दृष्टि से होना चाहिए और सामाजिक कार्य में प्रत्येक व्यक्ति के विकास का अवसर रहना चाहिए । यही 'जय जगत्' का विचार है ।

बँगलोर (मैसूर राज्य)
१९-१०-'५७

'जय हिन्द' से 'जय जगत्' की ओर

अब बच्चे-बच्चे 'जय जगत्' बोल रहे हैं । अगर इस मंत्र का कोई अर्थ है, तो वह बड़ी भारी चीज है ।

'संयुक्त कर्नाटक' एक विशाल विचार भी हो सकता है और संकुचित विचार भी । 'संयुक्त कर्नाटक' का मतलब है कि हम एक भाषा के लोग इकट्ठे हुए हैं और विश्व की सेवा के लिए हमने कमर कसी है । इस विचार से भारत में शक्ति आयेगी । लेकिन कुछ संकुचित विचारवाले लोग भी हममें शामिल हो जाते हैं । इसमें दुःख की कोई बात नहीं है । सद्विचार के प्रवाह में संकुचित विचारवाले भी शामिल हों, तो धीरे-धीरे उनके विचार उदार बन जाते हैं । 'संयुक्त कर्नाटक' पहला कदम है, इसके बाद 'संयुक्त भारत' और उसके बाद 'संयुक्त विश्व' बनाना है । 'जय जगत्' के सामने 'जय हिन्द' छोटी चीज है ।

इधर ४५० वर्षों में अमेरिका और हिंदुस्तान की खोज से लेकर अब चन्द्रलोक तक की बात हो रही है । 'जय हिन्द' का नारा १५ साल पहले निकला । पंद्रह साल में हम 'जय हिन्द' से 'जय जगत्'

★ रूस

प्यार की मस्ती

★ चीन

आँचल का गौरव

* अमेरिका

प्यारी-प्यारी गुदगुदी

* भारत

मातृ-वात्सल्य

तक पहुँच गये। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। दुनिया में विचार वेग से आगे बढ़ रहे हैं। सारा विश्व सम्मिलित परिवार बने, ऐसी भावना बढ़ रही है। विशाल भावना बनती है, तो हमारे जीवन पर भी उसका परिणाम होता है।

बच्चों ने सुबह हमारा स्वागत करते समय पुकारा—'जय जगत्'। यदि दुनिया के सब बच्चे इकट्ठे हो जायँ और मिलकर 'जय जगत्' बोलें, तो कोई बच्चा नहीं कहेगा कि हमारे देश की, हमारी कौम की जय हो। ईसामसीह ने कहा था कि बच्चों के मुँह से भगवान् बोलते हैं। यहाँ भी यही बात है। बच्चों के मुँह से निकली हुई बात दुनिया में जरूर सफल होनेवाली है। जब वे 'जय जगत्' बोलते हैं, तो उनका सौंदर्य और भी निखर उठता है। वैसा समाज तो बड़े लोगों को बनाना होगा, लेकिन उसका आरंभ बच्चों से होगा।

भयत्रस्त विश्व

आज दुनिया की क्या हालत है? सब भयभीत हैं। रूस-अमेरिका, पाकिस्तान-हिन्दुस्तान—सब एक-दूसरे से डरते हैं। सब एक-दूसरे को राक्षस समझते हैं। लेकिन ये लोग होते हैं—साधारण मनुष्य, बाल-बच्चेवाले, घर में एक-दूसरे को प्यार करनेवाले। फोटो लेकर देखिये कि हिंदुस्तान की माँ, पाकिस्तान की माँ, अमेरिका की माँ और रूस की माँ अपने बच्चों को किस तरह प्यार करती है। चारों चित्र आँख के सामने रखें, तो उनमें कोई फर्क नहीं दिखाई देगा। लेकिन ये एक-दूसरे से डरते हैं और भय से बड़े-बड़े शस्त्र बनाते हैं।

पुराने जमाने में जंगलों में शेर-बाघ आदि भयानक प्राणी रहते थे। उनके लिए मनुष्य ने तलवार और बन्दूक बनायी, तो वे बेचारे भाग गये। आज काठियावाड़ में, गिरनार के जंगलों में १००-१२५ सिंह बचे होंगे। उनकी जाति की जाति खतम होते देखकर मनुष्य ने दया-बुद्धि से उनका शिकार करने की मनाही कर दी है। उनको वश में करने के लिए तीर-कमान और बंदूक से ही मनुष्य का काम निभ गया। अब जरा त्रैराशिक कीजिये। शेर आदि से बचने के लिए बंदूक बनायी और मनुष्य से बचने के लिए एटम बम और हाइड्रोजन बम बनाने पड़े। बंदूक जितनी क्रूर है, शेर भी उतना ही क्रूर है। एटम बम जितना क्रूर है, मनुष्य भी उतना ही क्रूर है। मनुष्य को अनुभव नहीं है, फिर भी वह एक-दूसरे से डर रहा है। हम साँप समझकर रस्सी पीटते हैं। अब इसे क्या कहें? अब बच्चा-बच्चा 'जय जगत्' बोल रहा है, क्योंकि उसका डर इनके सामने खतम हो गया।

बानावर (मैसूर राज्य)
१२-११-'५७

विश्व-मानवता की अनिवार्यता : ३ :

आज मानव-धर्म की स्थापना के लिए सारी दुनिया के विचारकों की मदद मिल सकती है। मानव-समाज का हरएक नागरिक मानव-धर्म की स्थापना में मदद दे सकता है। इन दिनों विज्ञान ने इतनी खोजें की हैं कि आज मनुष्य के हाथ में बड़ी ताकत आ गयी है। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज उस ताकत से मानव-धर्म की स्थापना भी हो सकती है और सारा मानव-समाज खतम भी हो सकता है। विज्ञान ने यह समस्या खड़ी कर दी है कि हम चाहें तो मानव-धर्म की स्थापना के लिए राजी हो जायँ या खतम हो जायँ। ऐसी स्थिति में मानव मानव-धर्म की स्थापना ही करेगा। हम जब-जब इस पर सोचते हैं, तो हमें बड़ा उत्साह मिलता है। आज के जमाने में आत्मज्ञान और विज्ञान, दोनों शक्तियाँ हमारे पास हैं, पर हमारे पूर्वजों के पास केवल आत्मज्ञान की ही शक्ति थी। इसलिए सारी मानव-जाति की बुद्धि किसी योजना में नहीं मिलती थी।

आदर-प्रदर्शन से गुणों का अनुकरण महत्त्वपूर्ण

मानव-धर्म बनेगा, तो समाज में संत होंगे, महापुरुष होंगे, ज्ञानी होंगे, साधारण लोग भी होंगे। किंतु कोई भी अपने को ऊँच या नीच नहीं समझेगा। सब मानव होंगे। सवाल है कि तब क्या किसी महापुरुष के लिए आदर नहीं रहेगा? आदर तो अवश्य रहेगा,

परन्तु वह भी मानव है और हम भी मानव, ऐसा मानते हुए ही आदर रहेगा। एक भाई ने कहा, "विनोबा भावे देवरन्ते इद्दारे।" नहीं, विनोबा 'देवरन्ते' नहीं, मनुष्य ही है। उसमें कुछ गुण हैं, तो उन गुणों को तुम ले लो, पर दोष मत लो। मनुष्य गुण-दोष से भरा रहता है। किसीमें गुण ज्यादा होते हैं, तो उसके प्रति मन में आदर रहेगा ही।

जाति-भेद एकता में बाधक

पुराने लोगों ने हमें इतने धर्म-ग्रंथ दिये, इतनी शिक्षा दी, फिर भी आज हालत ऐसी है कि मरे हुए मनुष्य को भी दूसरी जातिवाले नहीं उठाते। किसी बच्चे का बाप मर जाता है, तो वह बच्चा अनाथ बन जाता है। गाँव के बाकी सारे बाप देखते रहते हैं। क्या यह धर्म है? इसका कारण यही है कि पुराने महापुरुषों के उपदेश के साथ जो योजना बनायी गयी, वह छोटी थी। एक जमाना था, जब कि दयालु जनों को सूझा कि मांसाहार का त्याग करना चाहिए। फिर वे अपने बच्चों से कहने लगे, दूसरों के घर खाना नहीं, शायद वे मांसाहार करते हों। इस तरह जाति-भेद बने। आज यूरोप, अमेरिका में भी यह चलता है। वहाँ वेजिटेरियन (शाकाहारी) और नानवेजिटेरियन मांसाहारी होटल हैं। बहुत से लोग मांसाहार छोड़कर शाकाहार करने लगे हैं। लेकिन इसके कारण अगर जाति बन जाय, तो वह रुकावट ही होगी।

सुदम्बी (धारवाड़)

१०-१-'५८

विज्ञान की प्रेरणा : ४ :

आज हम विज्ञान के जमाने में हैं। वैसे विज्ञान प्राचीन काल से चला ही आ रहा है। गाय का दूध निकालने की जब मनुष्य ने खोज की या बीज बोने की जब खोज हुई या खेती का तरीका जब ढूँढ़ा गया, तब भी विज्ञान था। विज्ञान ने मानव के जीवन पर असर जरूर डाला, पर मानव में परिवर्तन करने की आवश्यकता निर्माण नहीं की। आज विज्ञान ने इतनी प्रगति की है कि वह मानव में ही परिवर्तन की माँग कर रहा है। थोड़ा-थोड़ा परिवर्तन मानव में होता आया है। खेती की खोज नहीं हुई थी, तब उसका शिकारी जीवन चल रहा था और उसने छोटी सी बंदूक रख ली थी। इस तरह विज्ञान से मनुष्य के जीवन में कुछ-न-कुछ फर्क आता ही गया। परंतु आज जिस तरह से विज्ञान ने प्रगति की है, उससे मानव में ही परिवर्तन की जरूरत पैदा हुई है।

विज्ञान की भूमिका मन से ऊपर

मन के ऊपर की भूमिका विज्ञान की है। उपनिषदों में पहले कहा है, 'प्राणो ब्रह्मेति'; फिर कहा है, 'मनो ब्रह्मेति'; उसके बाद कहा है, 'विज्ञानं ब्रह्मेति'। प्राण की भूमिका प्राणियों की है, मन की भूमिका मनुष्यों की है और विज्ञान की भूमिका ऋषियों की है। यों उस जमाने में विज्ञान की भूमिका मालूम तो थी, परन्तु उसकी मानव पर जबर्दस्ती नहीं थी। वैयक्तिक विकास के तौर पर कोई

मनुष्य अपना विकास करते-करते विज्ञान की भूमिका पर पहुँच जाता था। बल्कि उन लोगों को उस भूमिका के ऊपर की भूमिका भी मालूम थी। लेकिन वह सारा व्यक्तिगत विकास का विचार था। एक मनुष्य विज्ञान की भूमिका में रहे और बाकी सब लोग मन की भूमिका में रहें, ऐसी हालत थी। जो ऊपर की भूमिका में जाता, उसका अधिक विकास होता और इसलिए वह श्रेष्ठ माना जाता था। वह सारी ऐच्छिक, आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया थी और उसमें व्यक्ति अग्रसर होते थे।

विज्ञान की प्रेरणा : सामूहिक साधना

किंतु अब इस जमाने में ऐसा नहीं चलेगा कि कोई महापुरुष ऐच्छिक तौर पर विज्ञान की भूमिका प्राप्त करे। अब तो अनिवार्य रूप से सब लोगों को विज्ञान की भूमिका पर आने का नाटक करना होगा। मान लीजिये, मैं झूठा मनुष्य हूँ, लेकिन नाटक में मुझे हरिश्चन्द्र का पार्ट मिला है। अगर मैं वहाँ अपना झूठ याद करूँ, तो हरिश्चन्द्र की भूमिका कैसे बनेगी? जैसे हरिश्चन्द्र की भूमिका अभिनीत करने के लिए अपना झूठ भूलना होगा; वैसे ही विज्ञान-युग में हम सब लोगों को अपनी मनोभूमिका भूल जानी होगी। मैं मनोभूमिका को भूल जाऊँगा, भूल जाऊँगा—भूल जाऊँगा—ऐसा तीन दफा याद करो, तो भी वह सिर पर बैठेगी। इसलिए विज्ञान की भूमिका पर जबर्दस्ती जाना पड़ेगा, ऐसा विज्ञान का कहना है। परन्तु आध्यात्मिक प्रयत्न से ही हम वहाँ जा सकेंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि विज्ञान आध्यात्मिक चिंतन की जबर्दस्ती कर रहा है। विज्ञान कह रहा है कि पुराने ऋषि व्यक्तिगत साधना

करते थे, अब तुम सामूहिक साधना करो। तब यह विज्ञान तुम्हारे लिए कल्याणकारी होगा।

विज्ञान की भूमिका पर जानेवाला वह अकेला व्यक्ति, वह ऋषि 'मैं' और 'मेरा' छोड़ देता था। वह वेदांत बोलता था—'यह घर मेरा नहीं, यह खेत मेरा नहीं, यह शरीर मेरा नहीं।' इसी तरह अब हम लोगों को कहना होगा कि 'यह घर, यह संपत्ति, यह खेत मेरा नहीं, हमारा सबका है।' विज्ञान के जमाने में यह अनिवार्यतः करना ही होगा। आपके सामने दो ही पर्याय हैं—सामूहिक साधना या मर मिटना। दो में से एक चुनिये, या तो आध्यात्मिक साधना कर पृथ्वी पर स्वर्ग लाइये या पृथ्वी के साथ स्वयं और स्वयं के साथ पृथ्वी को लेकर खतम हो जाइये।

मैं साल-दो साल से लगातार यही कह रहा हूँ कि हमें मन के ऊपर उठना होगा। 'सुपर-माइंड' की भूमिका पर जाना होगा। विद्यार्थी और शिक्षकों को विज्ञान की प्रयोगशाला में यह प्रयोग करना होगा। किसान, व्यापारी, सरकार, प्रजा—सबको यह प्रयोग करना होगा। धर्म की फिर से, नये सिरे से स्थापना करनी होगी। मूर्ति के सामने कपूर जलाकर आरती करने से भगवान् प्रसन्न नहीं होगा। सारे मानव-समाज को भगवान् समझकर उसकी पूजा करनी होगी।

धारवाड़

३१-१-'५८

मानव-समाज नदी के समान आदिकाल से बहता आ रहा है। पर नदी में जैसे कभी-कभी बाढ़ आती है और कभी उसका पानी बहुत कम हो जाता है, वैसे ही मानव-समाज में भी कभी उत्साह की बाढ़ आती है, तो कभी उत्साह कम हो जाता है।

महापुरुष ही समाज के मापदंड

जैसे दूध की कसौटी मक्खन पर से होती है, वैसे ही समाज की शक्ति की परीक्षा इस पर से होती है कि उस समाज से कितने महापुरुष निकलते हैं। गत सौ वर्षों का भारत का इतिहास देखें, तो राजा राममोहन राय से लेकर अबुल कलाम आजाद तक सैकड़ों ऐसे महापुरुष हिन्दुस्तान में मिलेंगे। इस दूध से इतने परिमाण में मक्खन निकला कि रामकृष्ण परमहंस, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अरविन्द घोष, विवेकानंद, लोकमान्य तिलक, रानड़े जैसे सैकड़ों नाम लिये जा सकते हैं। इतने ही समय में किसी भी देश में इतनी तादाद में महान् पुरुषों की संख्या देखने में नहीं आयी।

भारत की आत्मा शक्तिसम्पन्न

हिंदुस्तान की आत्मा में शक्ति का भांडार भरा है। यहाँ से संस्कृति का सर्वांगीण आध्यात्मिक ज्ञान समय-समय पर फूट निकलता है। हर यंत्र का यह लक्षण है कि थोड़ी देर के बाद वह शांत हो जाता है। दिनभर काम करने के बाद मनुष्य थक जाता है।

तो बीच में हिंदुस्तान में भी थकान आयी, पर इसमें कोई आश्चर्य नहीं। आश्चर्य की बात तो यह है कि 'यूनान मिस्र रोमाँ सब मिट गये जहाँ से, फिर भी मगर है बाकी नामो-निशाँ हमारा।' फ्रेंच लोगों ने, अंग्रेजों ने यहाँ आकर धक्के लगाये, चिकोटियाँ काटीं। भारत एक ऋषि था—चेतन से भरा हुआ। संपूर्ण ज्ञान और आध्यात्मिक प्राण उसमें था। उसी शक्ति से वह जाग उठा।

आत्म-सुधार और आत्म-परीक्षण का मादा

सारी दुनिया में परतंत्र देश के लोग परतंत्रता से चिढ़ते हैं और स्वतंत्रता के लिए बलवा कर देते हैं। पर हिंदुस्तान में क्या हुआ? वह परतंत्र था, तभी वह जागा। जागने के बाद उसने समाज-सुधार किये। भारत ने यह समझ लिया कि उसमें कुछ दोष हैं, इसीलिए भारतीय गुलाम रहे हैं। चिढ़ने से दोष-निवृत्ति नहीं होगी। कुछ काम करना होगा। स्वातंत्र्य के प्रथम प्रवक्ता राजा राममोहन राय थे। उन्होंने कहा कि "कैसी निद्रा में पड़े हो? समाज में बहुत बुराइयाँ आ गयी हैं, धर्म में जड़ता पैठ गयी है। उपनिषद् का धर्म कितना उज्ज्वल था! अतः आज धर्म में सुधार करना होगा।" रानड़े ने कहा: "यह 'डिवाइन डिस्पेन्सेशन' है।" याने उनकी यह सब ईश्वरीय योजना है, व्यवस्था है। इसका यह अर्थ नहीं कि हमें ब्रिटिश राज्य चाहिए और स्वातंत्र्य नहीं। पर वे समझते थे कि भारत को धक्का चाहिए और यूरोप की संस्कृति उसे धक्का देती है, यह ठीक ही है। उससे जड़ता चली जायगी। सोने को तपाने से जैसे शुद्ध सोना निकलता है, वैसे ही इस अग्नि से भारत तपेगा और शुद्ध होगा। और हुआ भी ऐसा ही।

दो संस्कृतियों के संगम के परिपक्व फल

भारत के उन दिनों के महापुरुष विवेकानंद सारा अंग्रेजी ज्ञान पी गये, पर उन्होंने अपनी चीज बहुत ही उज्ज्वलता से दुनिया के सामने रखी। अरविन्द को बचपन से ही अंग्रेजी सिखायी गयी। छह-सात साल की उम्र में ही उन्हें इंग्लैंड भेजा गया। वहाँ उन्होंने फ्रेंच, अंग्रेजी, ग्रीक, लैटिन सीखी। इतना ही नहीं, वे अपनी मातृ-भाषा बंगला भी भूल गये। पश्चिम की सारी संस्कृति वे पी गये। विज्ञान, साहित्य, काव्य, राजनीति, अर्थशास्त्र, तत्त्वज्ञान–सबमें प्रवीण हो गये। किन्तु उन्होंने यहाँ आकर उपनिषदों का अध्ययन किया, वेद पर भाष्य लिखा, गीता पर चिंतन किया और एक नया योग-शास्त्र दुनिया को दिया। इस तरह भारतीय संस्कृति को और उज्ज्वल बनाया। इन दो संस्कृतियों के संगम से परिपक्व फल निर्माण हुआ।

महात्मा गांधी दो संस्कृतियों के संगम थे। उन्होंने पश्चिम का विचार आत्मसात् किया। उनमें यहाँ का विचार पूरा भरा हुआ था ही। इस तरह मधुर फल निर्माण हुआ। सोया भारत उठा, तो पुराने भारत की उज्ज्वलता लेकर ही उठा।

श्री अरविन्द एक जमाने में हिंदुस्तान के राजनैतिक नेता माने जाते थे। गीता पर उन्होंने भाष्य लिखा। महात्मा गांधी हिंदुस्तान के राजनैतिक नेता थे, उन्होंने गीता पर भाष्य लिखा। लोकमान्य तिलक हिन्दुस्तान के राजनैतिक नेता थे, उन्होंने भी गीता पर टीका लिखी। इस सबसे क्या प्रकट होता है? यही कि उन्होंने अपने बाप की रियासत नहीं छोड़ी और नयी लेते गये और उससे इसे संपूर्ण समृद्ध बनाते गये। इस तरह भारत जाग गया और उस

जाग्रति के परिणामस्वरूप विशेष प्रकार के साधन से इसे स्वातंत्र्य मिला। फलस्वरूप भारत और इंग्लैंड के बीच प्रेम निर्माण हुआ।

पंडित नेहरू को अंग्रेजों ने १७ साल जेल में रखा, पर अंग्रेजों को आश्चर्य है कि इतना सताने पर भी नेहरूजी के मन में अंग्रेजों के प्रति द्वेष नहीं है। चर्चिल को इसका बहुत आश्चर्य हुआ था। यह महात्मा गांधी की तालीम का परिणाम था। महात्मा गांधी ने यह तालीम कहाँ से पायी? पुराने जमाने से हमारे यहाँ एक तत्त्वज्ञान चला आ रहा है। 'वैर से वैर नहीं मिटता, अवैर से ही वैर का नाश होगा। निर्वैरता में ही शक्ति है।'*—भारत की यही आवाज गांधीजी ने भारत के सामने रखी। लोग जाग गये। स्वराज्य-प्राप्ति के लिए लड़े, लेकिन द्वेष नहीं रहा। आजादी के इस नये साधन का चमत्कार ही यह था कि एक तारीख मुकर्रर कर अंग्रेज यहाँ से चले गये। ऐसा दुनिया के इतिहास में कहीं नहीं हुआ। आजादी की लड़ाई एक खेल हो गया। खेल के अन्त में जैसी मिठास रहती है, वैसी ही मिठास इसमें रही। सारांश, हमने स्वातंत्र्य-युद्ध एक अद्भुत पद्धति से लड़ा। यह नया विचार, नयी कल्पना भारत में ही निकली। अहिंसा से हम राजनैतिक क्षेत्र में सफल हो सकते हैं, यह इससे सिद्ध हो गया।

स्वराज्य-मंत्र-सा सर्वोदय-मंत्र भी दृढ़

स्वराज्य के बाद लोग ज्यादा देर तक सोते न रहें, इसलिए गांधीजी ने देश को स्वराज्य-प्राप्ति के पहले ही सर्वोदय का मंत्र दे रखा था। स्वराज्य के बाद थोड़ी सुस्ती आयी, लेकिन भारत

*न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो॥—धम्मपद

फिर जाग गया है। भारत के नेताओं ने कह दिया "ग्रामदान स्थायी चीज हो गयी।" जैसे स्वराज्य का मंत्र अटल और दृढ़ था, वैसे ही ग्रामदान का मंत्र होगा। अब शांति-सेना में लोग नाम देने लगे हैं। हुबली में एक टेकड़ी पर जाकर ३० जनवरी के दिन ३२ लोगों ने शांति-सेना में सेवा की प्रतिज्ञा ली। हम उन्हें क्या वेतन देंगे? कुछ नहीं। हाँ, (१) समाज से ही वे जो हासिल करें, सो करें, (२) मरने के लिए उन्हें तैयार रहना होगा और (३) सतत काम करना होगा और मौका आने पर मर मिटना होगा। हम उन्हें यही आश्वासन देते हैं कि हमारी तरफ से कुछ नहीं मिलेगा। फिर भी जवान-जवान लोग इसमें आते हैं, यह एक बहुत बड़ी बात है।

पहले के और आज के त्याग में फर्क

नयी उषा का उदय हो रहा है। अरुणोदय हो रहा है। इसलिए यह निश्चित समझ लें कि स्वराज्य की अपेक्षा आज ज्यादा उत्साह दीखता है। क्योंकि इसमें ग्राम-स्वराज्य की बात है। वह देश का स्वराज्य था। उस समय के आंदोलन में राज्य हाथ में लेने की बात थी। इसलिए वह त्याग तो था, पर छोटी चीज थी। आज जिन्होंने त्याग किया है, उन्हींको देना है। पहले लेना था और आज देना। पहले अंग्रेजों से लेना था, अब गरीबों को देना है। ग्रामदान में देना है। यह प्रेम का, करुणा का कार्य है। यह काम करुणा के बिना नहीं होगा। स्वराज्य अपना जन्मसिद्ध अधिकार था। यह गरीबों को मदद देने का जन्मसिद्ध कर्तव्य है।

सिद्धापुर
२५-५-'५८

दिमाग के साथ दिल भी विशाल हो

हमारे हृदय से 'हम भारतीय हैं', इससे कोई छोटी ध्वनि न निकले; इसका हमें ध्यान रखना चाहिए। हम फलाँ जाति, फलाँ धर्म, फलाँ पंथ, फलाँ परिवार या फलाँ कुटुम्ब के हैं—ये सारे 'फलाँ-फलाँ' गौण हैं। मुख्य बात यही है कि हम भारतीय हैं। लेकिन यह भी एक छोटा विचार है। क्योंकि जमाना जोरों के साथ आगे बढ़ रहा है। विज्ञान के कारण राष्ट्र के राष्ट्र नजदीक आ रहे हैं और दिन-ब-दिन छोटा चिंतन बेकाम साबित होगा। जिनका दिमाग मध्य-युग में रहता हो और पुराने इतिहास में जिनका मन रमता हो, उनके दिमाग और उनके मन इस जमाने के लिए छोटे पड़ेंगे। अब हमें अन्तर्राष्ट्रीय चिंतन करना होगा। वह भी चन्द दिनों में नाकाफी पड़ेगा। और फिर आन्तर विश्व-चिंतन करना होगा और इसके लिए हमारा दिमाग जितना विशाल है, उतना ही विशाल दिल भी रखना होगा।

तीन-चार सौ साल पहले अंग्रेज सारा हिंदुस्तान निगल गये—पर इंग्लैंड की जनता ने कुछ भी नहीं कहा। लेकिन अभी इंग्लैंड ने जब मिस्र पर हमला किया, तो इंग्लैंड की कुल जनता में क्षोभ निर्माण हुआ। आखिर इंग्लैंड को अपना आक्रमण वापस लेना पड़ा। इससे प्रकट है कि दुनिया में विवेक-बुद्धि और विश्व-बुद्धि प्रकट हो रही है।

बेलगाँव
१५-३-'५८

हमारी वृत्ति पूरी तरह 'वैश्वानर' की होनी चाहिए। ऋग्वेद के ऋषि ने दस हजार वर्ष पहले 'विश्व-मानुष' शब्द का प्रयोग किया है। वैसा हमें बनना है, क्योंकि यह इस युग की माँग है और आत्मज्ञान का आश्वासन है। विज्ञान और आत्मज्ञान, दोनों संकीर्णता पर समान रूप से प्रहार करते हैं—यह विशाल दृष्टि हम अपना लें। फिर भले ही हम घर का काम करें या गली की सफाई करें अथवा किसी राज्य का संचालन करें। हम यह भूमिका कायम रखेंगे, तभी संसार में टिक सकेंगे।

आध्यात्मिक संकट

आज समस्त संसार में एक आध्यात्मिक संकट पैदा हो गया है। मनुष्य का मन चक्कर में पड़ गया है। वह कुछ भयभीत हो गया है। उसे कुछ सूझ नहीं रहा है। एक के बाद एक, इस तरह वह शस्त्रों के आविष्कार कर रहा है। उसकी बुद्धि काम नहीं दे रही है। वह शस्त्रों के हाथों में चला गया है। शस्त्र उसके हाथों से निकल गये हैं। आज हिंसा पर से उसकी श्रद्धा टूटकर गिर गयी है, परन्तु अहिंसा पर अभी श्रद्धा जम नहीं पायी है। एक श्रद्धा थी, तो वह निश्चिन्त था। अब तो वह भी नहीं रही। फिर भी मानव शस्त्रास्त्र बढ़ाता ही जा रहा है। यह एक बहुत बड़ी समस्या है।

संयुक्त हृदय बिना संयुक्त वस्तु का निर्माण असंभव

बहुत वर्षों पहले मैं जब पवनार में था, तो आजाद हिन्द सेना के कुछ लोग मुझसे मिलने आये। उन्होंने 'जय हिन्द' कहा। मैंने उत्तर में कहा—"जय हिन्द, जय दुनिया, जय हरि"! मतलब यह कि 'जय हिन्द' में भी मुझे भय लगा। आज नहीं तो कुछ दिन बाद आपकी भी समझ में आने लगेगा कि 'जय हिन्द' में क्या खतरा है। यह 'जय जगत्' की भाषा मैंने कर्नाटक में शुरू की है। संयुक्त हृदय के बिना संसार में कुछ भी संयुक्त नहीं हो सकता। इसलिए संयुक्त हृदय के आन्दोलन के बिना हम जो कुछ भी दूसरी संयुक्त चीज करने जायँगे, वह हमें वियुक्त ही करेगी।

प्रेम-व्यवहार से ही प्रश्न हल होंगे

किसी भी आदमी को देखते ही ऐसा प्रतीत होना चाहिए, मानो मेरी आत्मा ही आ रही है। तब हम एक साथ बैठेंगे और खायेंगे-पियेंगे। जिस प्रकार घर में प्रेम होता है, वैसा ही समाज में हो। मूल में प्रेम होगा, तो झगड़ों में भी मधुरता होगी। आप सिद्धांत के लिए झगड़ रहे हैं, यह मैं तभी समझूँगा, जब आप लड़ें और फिर भी एक-दूसरे को प्रेम से गले लगायें। एक भाई कहने लगे कि हमें किसीसे द्वेष नहीं है। इस पर मेरा जवाब यह है कि मनुष्यता के लिए केवल द्वेष का न होना काफी नहीं है, प्रत्यक्ष प्रेम होना चाहिए। इतना होने के बाद हम चर्चा के लिए बैठें। तब विचार-भेंट भी हो सकेगी। लिखा है—**'मराठा तितुका मेळवावा, महाराष्ट्र धर्म वाढवावा।'** यहाँ पर केवल एक ही धर्म है। हम सब एक-दूसरे

को धारण करनेवाले हैं। स्नेही-प्रेमी हैं। एक-दूसरे के दर्शन के बिना हमें नींद नहीं आनी चाहिए। रामायण में लिखा है कि जिस दिन राम लक्ष्मण को नहीं देखते थे, उस दिन उन्हें नींद नहीं आती थी। **'न च तेन विना निद्रा लभते पुरुषोत्तम'** ऐसी प्रेम की अनुभूति हो। इस तरह का परस्पर के प्रति अन्योन्य अनुराग हो। फिर जितने भी वाद सामने आयेंगे, वे तत्त्व-बोध में मदद पहुँचायेंगे। अपने हृदयों में ऐसी अनुभूति उत्पन्न कीजिये कि केवल इस भारत में ही नहीं, संपूर्ण पृथ्वीतल पर जितने भी मनुष्य हैं, वे सब मेरे रूप हैं और मैं उनका रूप हूँ। एक बार यह सिद्ध कर लीजिये, फिर जीभर लड़ते रहिये। प्रेम के बगैर झगड़ा हो ही नहीं सकता।

'वन्दे मातरम्' की तरह 'वन्दे भ्रातरम्' भी

यह प्रश्न हल हो जायगा, तो क्या दूसरे झगड़े पैदा ही नहीं होंगे? जिस प्रकार एक दिन के बाद दूसरा दिन आता है, उसी प्रकार एक के बाद दूसरा, इस तरह प्रश्न पर प्रश्न उठते ही रहते हैं। कई लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या आप जमीन की समस्या हल करने जा रहे हैं? मैं कहता हूँ कि मैं क्या हल करनेवाला हूँ। शायद मेरी ही समस्या हल हो जाय। रामचंद्र ने बड़ा लोक-संग्रह किया, फिर भी वह बाकी रह गया। फिर कृष्ण आये, बुद्ध आये, और अभी-अभी हमारी आँखों के सामने गांधीजी आकर चले गये। उन्होंने भी लोक-संग्रह किया। परंतु इसका क्या कभी अंत आनेवाला है? ये वाद तो चलते ही रहेंगे। ऐसा मान लीजिये और परस्पर प्रेम बढ़ाइये, तो संयुक्त महाराष्ट्र में से संयुक्त विश्व निर्माण हो जायगा।

नहीं तो सब वियुक्त हो जायगा। रवीन्द्रनाथ कहा करते थे कि ये लोग 'वन्दे मातरम्' तो कहते हैं, परंतु 'वन्दे भ्रातरम्' कभी नहीं कहते। भाई-भाई आपस में लड़ते रहेंगे, तो क्या माँ को अच्छा लगेगा? इसलिए हम सब भाइयों को प्रेम से रहना चाहिए। सब भाई-भाई की तरह रहें। केवल इतना कहने से वेद को समाधान नहीं हुआ। भ्रातृत्व में भी समानता की कमी रह जाती है। इसलिए उन्होंने एक सुन्दर शब्द रख दिया—

'अज्येष्ठासः अकनिष्ठासः एते सं भ्रातरो वावृधुः'

भ्रातृत्व में समानता भी हो

भाई-भाई के बीच भी कोई बड़ा, कोई छोटा होता ही है। तो हम ऐसे भाई होंगे कि हमारे बीच न कोई छोटा होगा और न कोई बड़ा। ऋग्वेद के इस मंत्र में मुझे अत्यन्त प्रेम का दर्शन हुआ। जिस दिन हमें यह दर्शन हो जायगा, उस दिन हम तुकाराम की तरह नाचने लगेंगे। लोग कहते हैं कि तुकाराम को बड़ा दुःख सहना पड़ा। पर खुद उन्हें तो कोई शिकायत नहीं रही। उलटे उन्होंने तो लिखा है—'आनंदाचें डोहीं। आनंद तरंग आनंदचि अंग। आनंदाचे काय झाले सांगू। कांहीं कांहीं चिंता नाहीं।'

खड़केवाड़ा
२३-३-'५८

सर्व सेवा संघ, पुस्तकालय
राजघाट, वाराणसी
पुस्तक क्रमांक 2973

विश्वात्मा की अनुभूति : ७ :

ऋषियों का यह लक्षण ही होता है कि किसी भी विचार को उसकी संपूर्णता के साथ और स्वतंत्र रूप से वे ग्रहण करते हैं। ऐसे ऋषि पहले भी थे और आज भी हैं। संसार में कौन-सी शक्तियाँ काम कर रही हैं और वे किस दिशा में जा रही हैं, इसका अनुमान वे अपनी आत्मा की सहायता से कर लेते हैं। भूतमात्र में जो शक्ति काम कर रही है, उसका अंदाज उन्हें अपनी आत्मा से हो जाता है; क्योंकि जो पिण्ड में है, वही ब्रह्मांड में भी है। उन्होंने संसार को धर्म अर्थात् संसार को धारण करनेवाले तत्त्वों का दर्शन कराया। इस तरह आज हम धर्म नहीं बना सकते। हम तो सिर्फ यह देखने का प्रयास करते हैं कि क्या सारे संसार पर लागू होने-वाली कोई नीति हो सकती है ? इसलिए अलग-अलग वाद उत्पन्न हो रहे हैं। कोई कहता है कि संसार का कल्याण साम्यवाद से होगा, तो कोई कहता है समाजवाद से होगा। ये सब उपपत्ति, पद्धति, प्रमेय हैं। आज पद्धति की खोज चल रही है। साक्षात् धर्म पर विचार नहीं किया जा रहा है। परन्तु मनुष्य इस चिन्ता में जरूर है कि विश्व-धर्म को वह प्रत्यक्ष कर सके।

सम्पूर्ण मानवता एक है, यह तत्त्व मान्य होने पर भी विश्वा-त्मकता का जो व्यापक अनुभव होना चाहिए, वह अभी हमें नहीं हुआ है। आज संसार में इसी बात पर चिंतन चल रहा है कि इसका अमल कैसे किया जाय।

भारत पर विश्व-चिंतन की जिम्मेदारी

जिस दिन हिरोशिमा पर परमाणु बम गिराया गया, उसी दिन पुराना पिछड़ा हुआ मन चला गया। अब वह काम नहीं दे सकता। अब हम पर विश्व-व्यापक चिंतन करने की जिम्मेदारी आ गयी है। परंतु अभी मन तैयार नहीं हुआ है। आज हम बीच की अवस्था में हैं। इस विषय पर पिछले दो-तीन वर्षों से मैं बराबर सोच रहा हूँ। मुझे लगता है कि हम इस समस्या को सुलझा सकेंगे, ऐसी शक्यता परमात्मा ने भारत में निर्माण कर दी है। यदि हम निश्चय कर लें और इस देश में ऋषियों को पहले से जो मूलभूत विचार सूझा है, उसका आधार लेकर काम करें, तो संसार की समस्या हल कर सकते हैं। भारत पर परमेश्वर की बड़ी कृपा है। एक कृपा तो यह है कि भारत शस्त्र-शक्ति में बलवान् नहीं हो सकता। इस रमणीय अवस्था में आज ईश्वर ने हमें रख दिया है कि देश में जो थोड़ी-सी जमीन और जो अन्य साधन हैं, उनके आधार पर और दूसरे देशों को न लूटते हुए अमेरिका और रूस की बराबरी करना भारत के लिए असंभव है। परमात्मा ने हमारे लिए यह एक बहुत बड़ी वैचारिक अनुकूलता पैदा कर दी है।

दूसरी चीज भारत की वैश्वानर संस्कृति है। अर्थात् संसार में जितने भी भिन्न-भिन्न मानव-वंश हैं, उन सबका यहाँ मिश्रण है। अर्थात् भारत छोटे रूप में विश्व ही है। यहाँ की राष्ट्रीयता को आप अंतर्राष्ट्रीयता का रूप देंगे, तभी आप जिन्दा रह सकेंगे। यही परमात्मा की योजना है। विचारों में अगर आप केवल राष्ट्रवादी बने रहेंगे—और महाराष्ट्रवादी अर्थात् विश्ववादी नहीं बनेंगे, तो आप जिन्दा नहीं रह

सकेंगे। परमात्मा ने आपके ऊपर यह जिम्मेदारी डाल दी है कि राष्ट्रवाद की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ और व्यापक महाराष्ट्रवाद का आप रक्षण करें। उसे नहीं मानेंगे, तो आप पिछड़ जायेंगे।

खड़केवाड़ा
२३-३-'५८

भारत विश्व से अलग नहीं रह सकता

आज भारत विश्व से अलग नहीं रह सकता। कोई भी दीवाल या कोई भी परदा उसे विश्व से अलग नहीं कर सकता। दुनिया का कोई भी विचार भारत में आये बिना नहीं रह सकता। साथ ही भारत का कोई भी विचार विश्व में फैले बगैर नहीं रह सकता। इसीलिए आज मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है। सारा विश्व मेरी ओर बड़े वेग से आ रहा है। मान लीजिये, कोई लोह-चुंबक का पहाड़ हो और लोहे का जहाज, तो उस जहाज का लोह-चुंबक के पहाड़ पर जा गिरना अनिवार्य ही है। इसी तरह आज सारे विश्व का मेरी ओर आना अनिवार्य है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं।

कोल्हापुर
५-५-'५८

बुद्धि के साथ हृदय भी विशाल करें : ८ :

चार सौ साल पहले, जब अंग्रेज यहाँ आये, तो उन्हें यहाँ आने के लिए दो साल लगते थे। लेकिन अब तो एक ही दिन में इंग्लैंड पहुँच सकते हैं। रामायण में कथा आती है कि रावण-मुक्ति के बाद रामचन्द्रजी सुबह लंका से हवाई जहाज में बैठकर शाम को अयोध्या पहुँच गये। लेकिन आज तो राम ही नहीं, दूसरे भी जो चाहें, एक ही दिन में मास्को या लंदन पहुँच सकते हैं। एक जमाने में जो शक्ति राम के पास थी, वह आज साधारण मनुष्य के पास आ पहुँची है। दस हजार वर्षों में इतना बड़ा परिवर्तन हो गया, इसके साथ-साथ मानव की विचार करने की शक्ति, बुद्धि-शक्ति भी बढ़ी है। पर हृदय बड़ा नहीं हुआ, हृदय का विकास नहीं हुआ। मानव की बुद्धि बहुत बड़ी हो गयी, पर उसका हृदय छोटा-सा ही रह गया। परिणामस्वरूप संसार में बहुत झगड़े और क्लेश चल रहे हैं।

बुद्धि और हृदय के विकास में मेल नहीं

हृदय का जितना विकास हुआ है, उतना ही बुद्धि का भी विकास हुआ होता, तो मनुष्य सुखी होता अथवा बुद्धि का जितना विकास हुआ है, उतना ही हृदय का विकास हुआ होता, तो भी मनुष्य सुखी होता। किन्तु अब, जब हृदय छोटा है, तो क्या बुद्धि भी छोटी करेंगे? ज्ञान के परिमाण में हृदय और भावनाओं का विकास न होने के कारण ही यह सारी गड़बड़ी है। "अग्नि जलाता है"

यह ज्ञान जब तक नहीं था, तब तक तो ठीक था, किन्तु ज्ञान होने के बाद ज्ञान को मनुष्य टाल नहीं सकता। "अग्नि नहीं जलाता या शीतल है" यह मानने के लिए मेरे हाथ में कोई सत्ता नहीं है।

हृदय विशाल बनाना ही एक मार्ग

आज बहुत लोग कहते हैं कि अणुशस्त्र भयानक शस्त्र है, उस पर नियंत्रण रखना चाहिए। लेकिन यह कहना व्यर्थ ही है। अब शस्त्रास्त्रों पर अंकुश रखना संभव नहीं, वे तो उत्तरोत्तर बढ़ते ही जायँगे। ज्ञान की तो सदा अभिवृद्धि ही होगी। किन्तु उसका दुरुपयोग करने के बदले अगर हममें सदुपयोग करने की शक्ति हो, तो हम इस ज्ञान का सदुपयोग कर सकते हैं। जब अग्नि की खोज नहीं हुई थी, तो रसोई नहीं बनाते थे। मनुष्य कच्चा अनाज और फल-फूलादि ही खाता था। अग्नि की खोज हुई, तो उसका घर-घर रसोई पकाने में उपयोग होने लगा। उसका आग लगाने में भी उपयोग हो सकता है। किन्तु अग्नि की खोज के बाद उसका सदुपयोग करना चाहिए, दुरुपयोग नहीं; ऐसा विचार तो हो सकता है, लेकिन उसे हम भूल जायँ, यह नहीं हो सकता। एक शक्ति की खोज के बाद वह ज्ञान दिमाग से निकाल देने की शक्ति मनुष्य में नहीं है। अतः हमारे लिए आगे एक ही रास्ता है और वह यह कि ज्ञान जितना विशाल है, भावना भी उतनी ही विशाल बनायें और प्रेम भी विशाल बनायें। इसके सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं।

एक चीनी दार्शनिक ने लिखा है कि पचीस सौ साल पहले आदर्श गाँव कैसा होता था। उस गाँव के लोग इतने संतुष्ट और तृप्त थे कि उन्हें गाँव छोड़कर बाहर जाने की कभी जरूरत ही नहीं पड़ती थी।

वे जब कभी कुत्ते की आवाज सुनते, तो उन्हें लगता कि नजदीक में मीलभर के अन्दर कोई गाँव होना चाहिए। किन्तु उस गाँव में वे कभी नहीं गये और न वहाँ जाकर लोगों से सम्बन्ध स्थापित करने की उन्हें जरूरत ही पड़ी। उनके साथ न वैर था और न प्रेम ही। इसीका नाम आदर्श गाँव होगा, ऐसा कहा गया है। किन्तु आज जहाँ दस हजार मील का समुद्र बीच में पड़ा है, ऐसे राष्ट्र जापान और अमेरिका भी पड़ोसी राष्ट्र हो गये हैं। अब, जब कि देश अलग नहीं रह सकते, राज्य भी अलग नहीं रह सकते, समाज अलग नहीं रह सकते, तो एक गाँव में घर-घर अलग कैसे रह सकते हैं?

सारी संपत्ति विश्व-मानव-समाज की

लूणज (सौराष्ट्र) में पेट्रोल निकला है। इससे लोगों को बड़ा आनन्द हुआ है। उस समय हम लोग कच्छ में थे। मुझसे कुछ कच्छी भाइयों ने कहा कि हमारे प्रदेश में पानी की कमी है। मैंने उन्हें सुझाया कि यहाँ के वीरान रण में आप अगर खोदें, तो जमीन में से पानी आयेगा और खेती भी हो सकेगी। इस पर उन्होंने कहा कि एक जगह ऐसा खोदने का काम शुरू किया, तो वहाँ से पानी भी निकला। अब शायद पानी के बदले उसमें पेट्रोल भी निकले, क्योंकि पश्चिम के किनारे-किनारे पेट्रोल है। तब क्या हमारा देश स्वतंत्र रहेगा? सारी दुनिया की नजर इस पर जायगी। **कल सारी दुनिया एक होनेवाली है। तब ऐसा संकेत होगा कि जिस देश में पेट्रोल मिले, वह सारे विश्व का बने। अगर वह ऐसा नहीं होता, तो दुनिया में लड़ाई होगी।** आज अगर काठियावाड़वाले कहें कि यहाँ जो पेट्रोल निकला है, उस पर काठियावाड़ की मालकियत है,

दूसरे किसीकी नहीं; तो क्या हिन्दुस्तान यह कबूल करेगा ? किसी भी देश में ज्यादा पेट्रोल निकले, तो वह उस देश का तो माना ही जायगा, सारे मानव-समाज का भी माना जायगा। आज ऐसी बात नहीं है, पर कल अवश्य होगी ।

आपको भी बदलना ही होगा

सारी दुनिया में आज जो स्थिति है, उसे देखकर मैं कह रहा हूँ कि अब इस दुनिया में संकुचित भावना टिक नहीं सकेगी। उसे टिकाने की जो जितनी कोशिश करेगा, वह उतनी ही मार खायेगा। इसलिए जल्दी-से-जल्दी हमें हृदय विकसित कर ज्यादा उदार बनना चाहिए। बहुत-से लोग कहते हैं कि ऐसी चीज पहले नहीं होती थी, तो अब कैसे होगी ? इसमें क्या हर्ज है ? पहले नहीं होता था, पहले नहीं किया, तो अब कर सकते हैं। अब जमाना इतना बदल गया है कि आपका भी बदलना अत्यन्त जरूरी है। यह समझकर हृदय का विकास करें ।

बागथला (सौराष्ट्र)
३-१२-'५८

ग्राम-पंचायत और विश्व-पंचायत : ९ :

हिन्दुस्तान में पंचायत का अर्थ है—पाँच लोग। गाँव के बारे में कोई भी निर्णय करना हो, तो पाँच लोग मिलकर करें—इसका नाम है पंचायत। यह पंचायत अब विशाल रूप में सारी दुनिया में स्थापित करनी चाहिए। रक्त, श्वेत, कृष्ण, पीत और श्याम—इस तरह दुनिया में पाँच वर्ण हैं। रक्तवर्ण हैं "रेड इंडियन", पीतवर्ण हैं चीनी, जापानी; श्वेतवर्ण हैं युरोपियन, कृष्णवर्ण हैं अफ्रिकी और श्यामवर्ण हैं हिन्दुस्तानी। यों पाँच प्रकार की जनता सारी दुनिया में है। इन पाँच जातियों की प्रजा के लिए जो शंख बजाया जाता है, वह है "पंच-जन्य"। इन पाँच प्रकार की जनता की एक पंचायत बनेगी, तो वह सारी दुनिया का परस्पर व्यवहार करेगी। ऐसी दुनिया बनानी है। 'यूनो' (U. N. O.) भी एक प्रकार की विश्व-पंचायत ही है। परन्तु इस पंचायत में किसीको कुछ लेना-देना नहीं है। इस पंचायत के सामने बहुत-से विषय पड़े हैं और उस पंचायत की ही पंचायत हो गयी है। वह विश्व-स्वातंत्र्य पर आधारित नहीं है। यह सत्ता पर आधारित है। इसमें सब पक्ष अपना-अपना लश्करी सामर्थ्य बढ़ाना चाहते हैं, बढ़ा रहे हैं और आमने-सामने एक-दूसरे के विरोध में काम कर रहे हैं। कुछ लोग एक गुट में हैं, कुछ लोग दूसरे में। इस तरह सारी दुनिया दो पक्षों में बँट गयी है। एक रूस का पक्ष है, दूसरा अमेरिका का। छोटे-छोटे राष्ट्र कुछ इसमें हैं, कुछ उसमें। इस तरह सारी दुनिया दो

विभागों में बँट गयी है । एक बाजू से द्वन्द्व की योजना और रचना चलती है, दूसरी बाजू से एकत्र बैठकर बात करते हैं । दुनिया के सवालों को हल करने की कोशिश चलती है । सारे विश्व के विचार एक-दूसरे के सामने रखते हैं, फिर उसमें से मार्ग ढूँढ़ने का प्रयत्न करते हैं । यह एक नयी युक्ति है कि दुनिया में "बैलेंस ऑफ पावर" रहे । सामने जितनी शक्ति है, उतनी ही हमारी रहे, इसलिए द्वन्द्व का विचार रखते हैं । परन्तु अब यह पुराना विचार हो गया है । द्वन्द्वभाव बढ़ाने से ज्यादा दो पक्षों में समानभाव रहने से शांति रहेगी ।

विश्व-पंचायत और ग्राम-पंचायत

सारे विश्व की एक उत्तम पंचायत बनेगी, इसमें मुझे जरा भी संदेह नहीं है । एक ओर से ऐसी विश्व-पंचायत, विश्व-समिति बनेगी, दूसरी ओर से ग्राम-पंचायत, ग्राम-समिति बनेगी । ऐसे दो अलग-अलग सिरे रहेंगे और इनके बीच जो प्रान्त और राष्ट्र रहेंगे, उन प्रान्तों और राष्ट्रों का महत्त्व धीरे-धीरे घटेगा । पहली इकाई ग्राम-पंचायत होगी और आखिरी इकाई विश्व-पंचायत । दोनों सिरों का महत्त्व दिन-ब-दिन बढ़ता जायगा । दोनों के बीच में जो कड़ी है, उसका महत्त्व घटता जायेगा । आप देखेंगे कि ग्राम-पंचायत अच्छा काम करती रहेगी और ऊपर के संयोजन की जरूरत कम होती जायगी । फिर जिला-कलेक्टर वगैरह टूट जायेंगे । ग्राम-पंचायत का सीधा सम्बन्ध प्रान्तीय सरकार के साथ रहेगा । प्रान्तीय सरकार का सीधा सम्बन्ध राष्ट्रीय सरकार के साथ रहेगा । बीच की सारी सत्ता उड़ जायगी और आगे चलकर विश्व-पंचायत होगी । ग्राम-पंचायत और विश्व-पंचायत को जोड़नेवाली राष्ट्र-पंचायत रहेगी, तो रहेगी; परन्तु

प्रान्त-पंचायत नहीं रहेगी। **"एक बाजू से ग्राम-स्वराज्य की योजना, दूसरी बाजू से विश्व-स्वराज्य की योजना।"** एक बाजू ग्राम-मंदिर और दूसरी बाजू विश्व-मंदिर। दोनों को जोड़नेवाली कड़ी के तौर पर राष्ट्र मंदिर। प्रान्त-पंचायत मिट जायगी, तो प्रान्त-रचना की बातें स्वप्न जैसी हो जायँगी। आगे लोग प्रान्तों का विचार नहीं करेंगे।

प्रयोग, उद्योग और योग

आज पाकिस्तान-हिन्दुस्तान में नदियों के लिए झगड़े चलते हैं, क्योंकि कुछ नदियों का उद्गम-स्थान हिन्दुस्तान है, परन्तु इनका आगे का प्रवाह पाकिस्तान की ओर बहता है। हिन्दुस्तान के लोग यहाँ के सुधार के लिए पानी को रोकेंगे, तो पाकिस्तान के लिए सवाल खड़ा हो जायगा। ये सारे प्रान्त नष्ट हो जायेंगे, तो प्रान्त-रचना का सवाल ही हल हो जायगा। यह बहुत दूर का विषय नहीं है, क्योंकि यह विज्ञान-युग है। विज्ञान-युग में जिले खतम होंगे, प्रान्त खतम होंगे और बीच में राष्ट्र रह जायेंगे। एक बाजू में गाँव और दूसरी बाजू में विश्व रहेगा। फिर चंद्र के साथ सम्बन्ध बढ़ जायगा। मंगल के साथ भी बढ़ जायगा। आज तो एक प्रयोग के रूप में यह शुरू हुआ है। पहले प्रयोग होंगे, फिर उद्योग और फिर योग होगा। प्रयोग में कुछ सफल होंगे, तो तदनुसार उद्योग होगा। अगर उद्योग सफल होगा, तो उसमें से योग हो सकता है। विज्ञान खूब बढ़ेगा, तो उसमें पृथ्वी का सम्बन्ध दूसरी पृथ्वी के साथ होगा। फिर ग्राम, पृथ्वी और विराट् विश्व होगा। गाँव और विराट् विश्व को जोड़ने के लिए पृथ्वी रहेगी। इस तरह जैसे-जैसे विज्ञान का स्वरूप बढ़ेगा, वैसे-वैसे विराट् का दर्शन बढ़ेगा।

विराट् विश्व के सन्दर्भ में

गीता के एकादश अध्याय में भगवान् विश्वरूप में सामने आ खड़ा होता है; ऐसा एकाध रूप प्रकट होगा। बाकी तो छोटी-छोटी उपासना ही रह जायगी। जैसे दसवें अध्याय में कहा है कि स्थावरों में मैं हिमालय हूँ और नदियों में गंगा। सारी दुनिया अगर एक होगी, तो फिर नदियों में गंगा क्यों कहेंगे ? मिसिसिपि क्यों नहीं कहेंगे ? सारे विराट् के साथ संबंध होगा, तो गंगा की क्या कीमत है ? भगवान् ने कहा है कि मैं एक अंश से सारी दुनिया को पूर्ण करके, उसको व्याप्त करके अवशिष्ट रहा हूँ। मैं इसमें हूँ, उसमें हूँ, यह मेरे काम का नहीं है। इस तरह दसवाँ अध्याय कहकर भगवान् ने छेद उड़ा दिया है। उन्होंने कहा कि एक अंश से सबको व्याप्त करके भी मैं शेष हूँ। अर्जुन ने पूछा—ऐसा है, तो मैं छोटी-छोटी उपासना से छूट जाऊँगा और मुझे सारे विश्व का दर्शन करा दीजिये। भगवान् ने अर्जुन को जब विश्व-दर्शन कराया, तो वह घबड़ा गया, क्योंकि उस वक्त विज्ञान का जमाना नहीं था। अगर विज्ञान का जमाना होता, तो विश्व-रूप-दर्शन से अर्जुन घबड़ाता नहीं, शान्त हो जाता। अर्जुन कहने लगा कि हे भगवन्! तुम यह सारा समेट लो और अपना छोटा-सा रूप मुझे दिखाओ। भगवान् ने उसकी सान्त्वना के लिए छोटा रूप बनाया और कहा कि इस रूप में तुम नाहक डर गये। मैंने तुम्हें जो रूप दिखाया, वह देव-दुर्लभ है। सबसे महत्त्व का रूप विश्व-रूप ही है। विश्व-रूप और अपने बीच जितने रूप प्रकट होंगे, वे परदे का काम करेंगे। जिस तरह सीढ़ी होती है, उसी तरह परदा भी होता है। अमुक मर्यादा में सीढ़ी पर छोटे-छोटे लड़के

खेलते हैं। उन्हें गाँव के बाहर जाने का सवाल नहीं रहता। घर के आँगन में खेलने की छूट हो, तो पर्याप्त स्वतंत्रता मानी जाती है। लड़के जरा बड़े हो जायेंगे, तो आँगन के बाहर गाँव में घूम सकेंगे। जैसे-जैसे ज्ञान का क्षेत्र विस्तृत होगा, वैसे-वैसे व्यापक स्वतंत्रता की प्रेरणा होगी। जैसे-जैसे विज्ञान आगे बढ़ता जायगा, वैसे-वैसे छोटे जिले, प्रान्त और देश हट जायेंगे। मूल में जो "तत्त्वमसि", तू तथा तत् और मैं इस तरह दो ही रहेंगे। बीच में जो सीढ़ी है, परदा है; वह हट जायगा। इसलिए एक बाजू ग्रामदान और दूसरी बाजू जय जगत्, ऐसा मैं कहता हूँ। दोनों के बीच में जय हिन्द है, वह थोड़े दिन चलेगा। बाद में वह निकम्मा हो जायगा। फिर जय एशिया भी नहीं चलेगा। यूरोप और अमेरिका दोनों दूर हो जायेंगे, इसलिए सारा जगत् एक है, यह मानकर बोलेंगे; तभी कल्याण होगा।

मानवता का विराट् रूप प्रकट हो

मनु ने कहा है कि हिन्दुस्तान के ज्ञानी पुरुषों से सारी पृथ्वी के मानवों को बोध मिलेगा। हिंदुस्तान के ज्ञानियों पर मनु ने ऐसी जिम्मेवारी डाली है। इसलिए विश्वव्यापक दृष्टि रखनी चाहिए। ऋग्वेद में 'विश्व-मानुषः' शब्द दिया है। सारे विश्व के मानुष एक हैं, ऐसा मानना चाहिए। मानवों के पहले बहुत अवतार हो गये। सबसे पहला अवतार वराह का था। बाद में मत्स्यावतार हुआ। उसके बाद वामन रूप में छोटा-सा मानव प्रकट हुआ। परन्तु इस वामन के तीन कदमों में विराट् का दर्शन हुआ, ऐसी पुरानी कथा है। तात्पर्य यही है कि मानवता वामन के रूप में प्रकट होगी। हमें विराट् का दर्शन करना चाहिए और कार्य करने में स्फूर्ति लेनी चाहिए। हम विश्व-मानव

बनने की प्रतिज्ञा लें। अहिंसा, शांति और विश्वप्रेम का नाम लेकर हर घर में सर्वोदय-पात्र रखें। मुट्ठीभर अनाज और जगभर शांति की कल्पना उसके पीछे है। विश्वशांति होनी चाहिए, विश्व में क्लेश नहीं होने चाहिए और **"सर्वेषां अविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे"** सबके अविरोध से सारी योजना होनी चाहिए।

संकुचित भावना छोड़नी होगी

वल्लभाचार्य का एक वाक्य है—'सर्वत्र अनाग्रह से बरतना चाहिए', ग्रहमुक्त होना चाहिए। **जब जनता आग्रह-मुक्त, विग्रह-मुक्त, संग्रह-मुक्त और ग्रह-मुक्त होगी, तो विश्व एक दिव्य, भव्य स्वर्ग बनेगा।** ईसामसीह ने एक बहुत सुंदर वाक्य लिखा है—'हे प्रभो, तेरा राज्य जैसा स्वर्ग में है, वैसा पृथ्वी पर होना चाहिए।' ऐसी भाषा सब सन्तों की है। कवि ने गाया है, **"भरतखंड भूतलमा जन्म्यो।"** इसमें किसी प्रान्त की बात नहीं की है, सौराष्ट्र में या महाराष्ट्र में जनमा, ऐसा नहीं कहा है। कम-से-कम बोलना है, इसलिए भरतखंड की बात की है। पृथ्वी पर जन्म प्राप्त करना है, यही बड़ा भाग्य है; ऐसा उसने कहा है। हम सारी पृथ्वी पर मानव-देह धारण करते हैं, यह बड़ा भाग्य है। हमारे पूर्वज, साधु-संत और ऋषि समग्र-दर्शन करते थे। आज हम संकुचित दर्शन, संकुचित भावना रखते हैं। हमारे पूर्वजों ने जितना व्यापक शब्द का उच्चारण किया, हमें उतना व्यापक बनना चाहिए। परिवार बनायें, उसके बाद विश्व-परिवार बनायें।

मावली (गुजरात)
२७-१०-'५८

हमेशा का नारा 'जय जगत्' : १० :

चार बातें ध्यान रखने योग्य हैं : (१) आज का नारा जय जगत्, (२) हमेशा का नारा जय जगत्, (३) हमारा नारा जय जगत् और (४) सबका नारा जय जगत्। आज का, कल का और परसों का भी वही नारा है। उसीसे उद्धार होगा। 'हमारा नारा' अलग नहीं, इसलिए 'सबका नारा', 'आज का नारा' और 'हमेशा का नारा' जब एक ही होगा, तभी सब लोग एक होंगे, नहीं तो अनेक कारणों से फूट पड़ेगी और धर्म-भेद, जाति-भेद, पंथ-भेद, देश-भेद, भाषा-भेद जैसे टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे। समाज की गाड़ी यहीं अटकी हुई है।

यह भारी जातीय स्वार्थ

व्यक्ति त्याग करता है, तो समाज उसे पसंद करता है। मैं त्याग करता हूँ, तो उससे समाज को सुख होता है; क्योंकि उससे उसका स्वार्थ सधता है। लेकिन एक जाति दूसरी जाति के लिए त्याग करे, तो वह सध नहीं पाता। अगर यह बात कोई कहता है, तो समाज उसे सुनने के लिए तैयार नहीं। ब्राह्मण अपना हित देखेगा, मुसलमान अपना हित देखेगा। मुसलमान हिंदुओं का हित देखें और हिंदू मुसलमानों की चिंता करें, ब्राह्मण ब्राह्मणेतर की फिक्र करें और ब्राह्मणेतर ब्राह्मणों का हित देखें, रूस अमेरिका की चिंता करे और अमेरिका रूस का हित देखे—यह बात समाज को पसंद

नहीं, मान्य नहीं। कोई व्यक्तिगत स्वार्थ न साधे, इसे समाज मान्य करता है। व्यक्ति अगर त्याग करे, तो समाज उसका गौरव करता है, उसे मूर्ख नहीं कहता, उसे अनुनयवाद नहीं मानता; लेकिन 'दूसरी जाति की चिंता कीजिये' यह कहते ही समाज नाक-भौं सिकोड़ने लगता है। अगर हिंदू कहे कि मुसलमानों का ध्यान रखिये, तो यह मुसलिमपरस्ती मानी जाती है। सारी जातियाँ स्वार्थ से चिपकी हुई हैं।

'जय जगत्' कब होगा ?

व्यक्ति का त्याग पर्याप्त नहीं,—ऐसा जब मालूम पड़ेगा, तभी 'जय जगत्' होगा। इसलिए हमें सभी की फिक्र होनी चाहिए। अगर हम अपनी ही चिंता करें, तो 'जय जगत्' नहीं होगा। इसी तरह अपनी-अपनी जाति की चिंता करें, तो भी न होगा। वह भी जातीय स्वार्थ ही माना जायगा। यह स्वार्थ बड़े पैमाने पर भी हो सकता है। राष्ट्रीय नेता भी साधारण किसान जितने ही राग, द्वेष और मत्सर से भरे रहते हैं। यह अलग बात है कि उनका दोष बड़े पैमाने पर होता है। इसलिए 'जय जगत्' हमारा नारा, सबका नारा, आज का नारा और कल का भी नारा है। यह विचार ध्यान में आते ही प्रगति होगी, विकास होगा।

राजूरी (बीड)

६-७-'५८

मैत्री : समाज-रचना का आधार : ११ :

आज विश्व-समाज के सामने एक ही मुख्य प्रश्न है कि समाज-रचना और राष्ट्र के संरक्षण का आधार क्या हो? अब तक की समाज-रचना स्पर्धा के सिद्धान्त पर आधारित रही है। एक की दूसरे से स्पर्धा होती है और इसमें जो मनुष्य अधिक उपयोगी, अधिक बुद्धिमान् होता है, उसीकी जीत होती है। उसीकी प्रगति भी होती है। उसे इनाम वगैरह दिये जाते हैं और दुनिया के अनेक सुख भोगने को मिलते हैं। किन्तु जो आलसी है, सुस्त है, जिसकी बुद्धि में न्यूनता है, उसे सुख और भोग कम ही मिलते हैं। इस प्रकार मेहनत करने का प्रयत्न आरंभ होता है और उससे जो उत्तेजन मिलता है, उसमें स्पर्धारूपी योजना निहित है, इतना ही नहीं, प्रकट ही है कि यह स्पर्धारूपी योजना इस समाज-रचना का एक आधार है। सशस्त्र सेना इस योजना को सुदृढ़ बनाती है।

मेरा विचार है कि स्पर्धा और सैन्य-बल में हमारे पूर्वज इतने बढ़े-चढ़े नहीं थे, जितने कि हम लोग हैं। उनमें अपने जितना विचार-सामर्थ्य भी नहीं था। उनके पास शस्त्रास्त्र नहीं थे। नाम-मात्र के लिए कुछ थे। साधन भी आज जैसे नहीं थे और आस-पास का संबंध भी कम था। जमीन अधिक थी और मनुष्य-संख्या आज की अपेक्षा बहुत कम। इसलिए परस्पर स्पर्धा टालने की गुंजाइश थी। सैन्य को क्षात्र-धर्म कहें, चाहे मिलिटरी। क्षात्र-धर्म में धर्म-संयम, प्राणत्याग की तत्परता और दूसरों की रक्षा का उद्देश्य

होता है, जब कि मिलिटरी होती है आक्रमणशील वृत्ति। यह दोनों में फर्क है, किंतु स्वरूप दोनों का एक ही है। आज इन्हीं हिंसा और स्पर्धा ने मिलकर मनुष्य के मन को विकृत बना दिया है। इनके कारण मानव विवश हो गया है। समाज के रक्षण का काम और समाज की रचना का काम हिंसा और स्पर्धा के चंगुल में फँस गया है। रक्षादेवी हिंसा बन गयी है और रचनादेवी स्पर्धा।

यह आपस की होड़ घर में भी भाई-भाई के बीच और दूसरे संबंधियों में भी थोड़ी-बहुत चलती है। जब से कुटुम्बों में कानून का प्रवेश हुआ, तब से कुटुम्ब में स्नेह की जो कल्पना और भावना थी, वह ज्यादातर कल्पना ही रह गयी। घर में स्नेह ही एकमात्र तत्त्व रहना चाहिए, किंतु जब माँ का हक, बाप का हक, भाई का हक, बहन का हक इत्यादि नाहक अधिकार घुस गये और उन्हें कानून का आधार मिल गया, तब भाई-भाई में जो स्नेह-ग्रन्थि की कल्पना थी, वह नहीं रही।

मित्रभाव का वैशिष्ट्य

हमारे पूर्वजों को इसका भान था, इसीलिए उन्होंने बंधु के लिए 'मित्र' शब्द प्रयुक्त किया है। वेद में एक श्लोक है, "**मित्रस्य मा चक्षुषा, सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्य मा चक्षुषा, सर्वाणि भूतानि समीक्षे॥**" सर्व भूतमात्र मुझे मित्र की दृष्टि से देखें और मैं सर्वभूतों को मित्र की दृष्टि से देखूँ। दुनिया और मेरे बीच मैत्री का संबंध रहे, ऐसा वे चाहते थे। बंधु और बंधन, दोनों शब्द एक ही धातु से निकले हैं, इसलिए उन्हें लगता कि बंधु कहलाने में कुछ बंधन है। भाइयों के बीच की स्पर्धा को स्पष्ट करनेवाला

शत्रु का पर्यायवाची शब्द 'सापत्न' है ।साप त्न ही शत्रुत्व है । एक ही माँ-बाप से उत्पन्न भाई अथवा एक पिता और दो माताओं से उत्पन्न लड़के-बच्चे एक-दूसरे के विरोध में सापत्न कहे गये । हिंदू और मुसलमानों में नहीं पटती, उसका भी यही कारण है कि वे 'भाई-भाई' हैं । दक्षिण कोरिया और उत्तर कोरिया दोनों भाई-भाई हैं और उनका परस्पर विरोध है । हमें या तो भाई से डरना चाहिए या शत्रु से । इसीलिए शास्त्रकारों ने बन्धु शब्द छोड़कर 'मित्र' शब्द का उपयोग पसन्द किया । मैत्री में अधिकार का भाव नहीं रहता, प्रेम ही प्रेम रहता है, जब कि बंधुत्व में अधिकार की बात भी होती है । जहाँ अधिकार आया, वहाँ स्नेह खंडित हो जाता है ।

अज्येष्ठाः अकनिष्ठाः

वेद में भाई-भाई किस तरह रहते थे, इसका भी वर्णन है : "अज्येष्ठाः अकनिष्ठाः ।" जितने भाई हैं, उनमें न कोई ज्येष्ठ है, न कोई कनिष्ठ है । अर्थात् भाइयों में बड़े-छोटे का सम्बन्ध न होकर मित्रों का-सा सम्बन्ध होना चाहिए । इसलिए कह सकते हैं कि मैत्री सर्वोत्तम संबंध है और वही समाज-रचना का आधार है । मित्र एक-दूसरे से स्पर्धा नहीं करते । जब एक मित्र दूसरे की मदद करता है, तो दूसरा उसके प्रति आभारी हो जाता है । इसके विपरीत सम्बन्धी हमेशा अपने-अपने हकों के लिए जूझते हैं और अपने ऊपर किये गये उपकारों की गिनती कभी नहीं करते । पत्नी जीवनभर पति की सेवा करती है, पर उसे पति याद नहीं रखता । प्रत्युत यदि एक दिन भी पत्नी ने पति की आज्ञा नहीं मानी, तो वह उसे जीवनभर याद रखता है । जीवनभर उसने सेवा की,

इसके बारे में वह कहता है, 'इसमें क्या नयी बात हुई ? वह मेरी पत्नी है और यह उसका धर्म ही है।' मित्रों के संबंध में इससे उलटी बात है। किसी भी तरह कर्तव्य की जिम्मेदारी से बरी रहकर जरूरत पड़ने पर वह मदद करता है और उसकी वह सेवा जिन्दगीभर याद रहती है। इसलिए हमारे पूर्वजों ने अधिकारों से ऊपर उठकर जीवन-दर्शन समझाने के लिए एक अच्छी बात कही है कि सोलह वर्ष की उम्र प्राप्त होने पर पुत्र पुत्र नहीं रहता, बल्कि मित्र हो जाता है। सोलह वर्ष तक पिता ने उसका लालन-पालन करके उसे बड़ा किया। इसके बाद पुत्र को जीवन में पिता की सलाह की जरूरत पड़े, तब उसे सलाह दे। नित्य सलाह की जरूरत न पड़े, इसलिए वैसा योग्य शिक्षण सोलह वर्ष की उम्र तक हो जाय। सारांश, सोलह वर्ष की अवस्था तक पुत्र में आत्म-रक्षण की शक्ति आ जानी चाहिए। आत्म-रक्षण की शक्ति एकमात्र मैत्री के आधार पर विकसित हो सकती है।

बाँकानेर (सूरत)
२६-९-'५८

पंचशील : भारत के लिए नया नहीं : १२ :

आप सभी एक महानगरी के नागरिक हैं। दुनिया के समाचार सदैव आपके कानों तक पहुँचते रहते हैं। आज आपने अखबार में पढ़ा ही होगा कि मानव ग्रहों पर पहुँचने का प्रयत्न कर रहा है। लोग मंगल और चन्द्र की खोज में निकल पड़े हैं तथा वहाँ पहुँचने के लिए नये-नये साधन प्रस्तुत कर रहे हैं। आप लोगों ने सुना ही होगा कि आज एक कुत्ता भी ८०० मील ऊपर पहुँच गया। जिस जमाने में कुत्ता भी इतनी उन्नति कर सकता है, क्या उस जमाने में मानव का अवनत मन चल सकता है ?·इसलिए यह निश्चित समझ लें कि अब ऐसा जमाना आ रहा है, जब कि सेवा को विशाल रूप और विचार को विश्वरूप देना पड़ेगा। संकुचित और छोटा विचार करेंगे, तो निश्चय ही हार और मार खायेंगे। नागरिक छोटे-छोटे विचारों में उलझेंगे, तो मतभेद ही बढ़ायेंगे, जिनसे क्लेश ही बढ़ेंगे। यह पुराने जमाने की बात हो गयी, नये जमाने की नहीं।

संयुक्त विश्व के लिए यत्न हो

मैंने कर्नाटक में प्रवेश किया, तो बच्चे संयुक्त कर्नाटक का नारा लगा रहे थे। मैंने उनसे कहा कि 'संयुक्त कर्नाटक' चाहते हैं या 'संयुक्त विश्व' ? यदि यह संयुक्त कर्नाटक संयुक्त विश्व का पहला कदम हो, तो उसका गौरव ही करना होगा। लेकिन यदि संयुक्त

कर्नाटक 'विभक्त विश्व, विभक्त भारत' बनाने के लिए हो, तो उसमें कुछ भी गौरव नहीं। उसमें हीनता ही मानी जायगी। इस पर बच्चों ने कहा : 'संयुक्त कर्नाटक संयुक्त विश्व के लिए ही चाहिए।' यह सुनकर मुझे बड़ा ही सन्तोष हुआ और फिर मैंने उनके द्वारा 'जय जगत्' के नारे लगवाये। इस तरह कर्नाटक में 'जय जगत्' का उद्घोष हुआ। इसलिए आप लोग भी अपने बच्चों को संकुचित नहीं रख सकते।

भारत का यही इतिहास रहा है कि 'किसी-न-किसी जमाने में दुनिया के सभी देशों से बड़ी-बड़ी जमातें यहाँ आयीं और उन सबका यहाँ समान रूप में संग्रह कर लिया गया। आज दुनिया में 'पंचशील' और 'सह-अस्तित्व' के जो नारे लगाये जा रहे हैं, वे तो इस भारत-भूमि के पुराने उद्घोष (नारे) हैं। यहाँ से प्राचीन काल में यही सन्देश सुनाया गया कि दुनिया में अविरोधी जीवन बिताया जाय और कोई भी किसीके जीवन पर हमला न करे। प्रेम से एक-दूसरे से उनकी बातें सीखी जायँ और उन्हें अपनी बातें सिखायी जायँ।' इसीका नाम सह-जीवन है।

फिर 'पंचशील' भी कोई नया नहीं। बौद्ध और योग-शास्त्र में जो बातें आयी हैं, वही पंचशील है। याने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये ही पंचशील हैं, जिसे 'पंचचर्या' नाम दिया गया है। बौद्धों ने इसे 'पंचशील' नाम से ग्रहण किया, तो पतंजलि ने 'महाव्रतों' के रूप में। वेद में भी इसका उल्लेख पाया जाता है। 'पंच-याग' या 'पंच-महायज्ञ' इसीका प्रतीक है। प्राचीन काल में ऋषियों ने ज्ञानदृष्टि से देखकर यह बात लोगों के सामने

रखी। परिणामस्वरूप भारत-जैसे विशाल देश में अनेक जातियाँ, पंथ, भाषाएँ समाविष्ट हैं। यह बात दूसरे किसी देश में नहीं पायी जाती। चीन इतना बड़ा देश है, पर वहाँ भाषा एक ही चलती है, जिसे 'चीनी भाषा' कहते हैं। भले ही बोलचाल की भाषाएँ भिन्न-भिन्न हों, पर वाङ्मय की, साहित्य की भाषा तो वहाँ एक ही है। वहाँ अनेक भाषाएँ विकसित नहीं हो पायीं। यूरोप में तो भाषाओं के आधार पर एक-एक स्वतंत्र राष्ट्र ही बन गये हैं, जो वास्तव में राष्ट्र नहीं, प्रान्त ही कहने लायक हैं।

इस दृष्टि से देखें, तो यूरोप विचार के क्षेत्र में हिन्दुस्तान से बहुत ही पिछड़ा है। हमें उससे विज्ञान के क्षेत्र में बहुत कुछ लेना है, यह सही है। उसके बिना सर्वोदय हो नहीं सकता। लेकिन यूरोप का समाज-शास्त्र हमसे बहुत पिछड़ा है। जहाँ यूरोप में अनेक भाषाएँ हैं, वहाँ भारत में भी वे हैं। लेकिन हिन्दुस्तान में विकसित भाषावाले अनेक प्रदेश होने पर भी कश्मीर से कन्या-कुमारी तक यह एक अखण्ड देश है, ऐसा यहाँवाले मानते हैं। काशी का व्यक्ति रामेश्वर तक अपना संबंध जोड़ता रहा है। इस तरह हमारे ऋषियों ने हमारी संस्कृति को बहुत ही व्यापक बना दिया। इस तरह स्पष्ट है कि भारत ऐसा देश है, जहाँ अनेक जमातें एकत्र रह सकती हैं। हमारे देश के लिए यह बहुत बड़े गौरव की बात है।

ध्यान रखिये कि सारी दुनिया को बचानेवाली शक्ति का उदय इसी साबरमती के किनारे पर हुआ है। इसी अहमदाबाद शहर में अहिंसा के सूर्य का उदय हुआ था। गुजरात का यह नव-स्मरण

विशिष्ट स्मरण माना जायगा। बापू जब यहाँ आये और गुजराती में बोलने लगे, तो यहाँ के साहित्यिक कहने लगे कि बापू को साहित्य का पता ही क्या ? सचमुच साहित्य में तो नव-रस हुआ करते हैं, लेकिन बापू तो शान्त-रस ही चाहते थे। प्रसंगवश शृंगार, वीर आदि कदाचित् आ जाय, तो अलग बात है। लेकिन शान्त-रस से ही सभी रस पैदा हो सकते हैं, यह उन्होंने बता दिया। बापू का मुख्य रस शान्त-रस ही था। उन्होंने ब्रिटिश सरकार से मुकाबला करने में सदा इसी रस का सहारा लिया। उनका अपना सारा साहित्य, जो प्रायः गुजराती में ही अधिक है, इसी शान्ति-रस से ओतप्रोत है। इस तरह उन्होंने सर्वत्र शान्ति-शक्ति ही प्रकट की। मैं आशा करता हूँ कि उनका अहमदाबाद भी वही शान्ति-शक्ति प्रकट करेगा।

विज्ञान-युग में यह बात ध्यान रखने की है कि विज्ञान तथा हिंसा दोनों मिलेंगे, तो सर्वनाश हो जायगा और विज्ञान तथा अहिंसा दोनों मिलेंगे, तो सर्वोदय होगा। सर्वोदय के लिए अहिंसा और सर्वोदय दोनों साथ-साथ चलने चाहिए। यदि विज्ञान पर किसीका अधिकार है, तो वह सर्वोदयवालों का ही है, राष्ट्रवादी, कौमवादी आदि किसी भी संकुचित वादी के हाथ विज्ञान पहुँचेगा, तो वह उसे पचा नहीं सकता। अहिंसा और सर्वोदय में ही उसे पचाने का शक्ति है। आज का विज्ञान-युग यदि किसीके लिए सर्वाधिक अनुकूल हो सकता है, तो वह साबरमती के लिए ही, ऐसा मैं कह सकता हूँ। विज्ञान-युग में साबरमती दुनिया का मध्यबिन्दु बनेगी। जब सभी देश स्वतंत्र होंगे—आज सभी स्वतंत्र नहीं हैं—तो दुनिया के नक्शे में यह अहमदाबाद मध्य-

बिन्दु के रूप में रहेगा। लेकिन यह बात सिर्फ तालियाँ बजाने से नहीं होगी। गांधीजी की इस प्रतिष्ठा को सँभाल रखेंगे, तभी यह हो सकेगा। नहीं तो तालियाँ बजाते हैं, तो दोनों हाथों को अलग-अलग ही कर देते हैं। आज दक्षिणपंथी 'शान्ति-शान्ति' कहते हैं, तो वामपंथी 'क्रान्ति-क्रान्ति'। दोनों कभी एक नहीं हो पाते। लेकिन सर्वोदय में दोनों का समावेश हो जाता है। सर्वोदय में शान्तिमय क्रान्ति की बात है। उसमें दक्षिण और वाम दोनों एकत्र हो जाते हैं। यह सारी कीमिया बापू के विचारों में थी। मैं बापू के विचारों का ही सेवक बनकर गत ३०-४० वर्षों से काम कर रहा हूँ और परिव्राजक बनकर आपके दरवाजे आ पहुँचा हूँ। अब देखना है, आप क्या करते हैं?

अहमदाबाद
२०-१२-'५८

भारत में जो भूदान, ग्रामदान का काम चला है, उससे दुनिया के लोगों को लगा है कि इस काम में कुछ ऐसी चीज है, जिससे आज की देश-देश की समस्याएँ हल करने का मार्ग खुल जायगा। इसीलिए बीच-बीच में हमारी यात्रा में यूरोप, अमेरिका, एशिया आदि मुल्कों के कई लोग आते हैं, हमारे साथ घूमते हैं और फिर अपने-अपने देशों में जाकर लेख और ग्रन्थ लिखते और आशा रखते हैं कि दुनिया में शांति-स्थापना के लिए इसमें से कुछ तथ्य निकलेगा। इस तरह अब भारत को दुनिया में कुछ काम करने का मौका मिला है।

विश्व-नागरिकता की ओर बढ़ें

हमारे सामने लड़के बैठे हैं। ये स्वतन्त्र भारत के विद्यार्थी हैं। इसलिए विश्व-नागरिक बन सकते हैं। यदि हम अपने देश को ठीक ढंग से बनायें, शांति की ताकत कायम करें, तो अपना असर कुल दुनिया पर डाल सकते हैं। यहाँ जो भी चीज करें, वह फौरन ही दुनिया में फैलेगी। अब दुनिया और हमारे बीच कोई पर्दा नहीं रहा। यहाँ के अच्छे काम दुनिया में फैलेंगे और उसका दुनिया पर असर होगा। बुरे काम का भी दुनिया पर असर होगा। इसलिए हम कदम-कदम पर सोचें और ऐसा काम करें, जिससे औरों को भी मालूम पड़े कि भारत की ताकत एक काम में जुट गयी

है। यहाँ की लगभग ३७ करोड़ लोगों की जमात अपने देश का वैभव बढ़ाने के लिए और कुल दुनिया की सेवा के लिए—शांति और स्वतन्त्रता की स्थापना करने के लिए—अग्रसर हो रही है।

यह मत समझिये कि सीकर जिला हिन्दुस्तान के एक कोने में है और दुनिया के साथ उसका सम्बन्ध नहीं है। बल्कि आप यही समझें कि इस समय आप दुनिया के मध्य-स्थान में हैं और जो भी काम करते हैं, उसका प्रभाव सारे विश्व पर होता है। आप अगर झगड़ते हैं, तो इंग्लैण्ड के लोगों को उसकी जरूरत नहीं है। झगड़े तो वहाँ भी चलते हैं, द्वेष चलता है, स्वार्थ चलता है, तो दुनिया को उनकी भी जरूरत नहीं। इसलिए अब कोई ऐसा ठोस कदम उठायें, जिससे दुनिया को मार्ग मिले।

अंग्रेजी में हमने एक भी लेख नहीं लिखा, लेकिन जर्मन, फ्रांस, अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि में हमारे आन्दोलन की बातें फैल गयीं, क्योंकि दुनिया को उसकी प्यास है। इसलिए हमारे सामने सवाल यही है कि आपके गाँव में आप कौन-सा ऐसा काम कर रहे हैं, जिससे दुनिया के नागरिक के नाते आप दुनिया को कुछ दे सकें? हम भोजन करते हैं, खाना खाते हैं, सिनेमा देखते हैं और अन्य स्वार्थ भी साधते हैं—लेकिन ये सब प्रवृत्तियाँ दुनिया के लिए मार्गदर्शन का काम नहीं कर सकतीं। हम स्वतंत्र देश के नागरिक हैं। इसलिए अब विश्व-नागरिक बनने का हमारा मार्ग खुल गया है। इसी दृष्टि से काम होना चाहिए।

रामगढ़ (राजस्थान)

२०-१-'५९

मैं अपने इस काम को राष्ट्रीय आन्दोलन मानता ही नहीं, जागतिक आन्दोलन मानता हूँ। जागतिक पृष्ठभूमि पर ही विचार करता हूँ कि कौन-कौन से कदम उठाये जायँ ? इसके लिए हमें सही तरीके ढूँढ़ने होंगे और यह हम तभी कर सकते हैं, जब हम जागतिक परिस्थिति में अपने को रख सकें। इसीलिए हम 'जय जगत्' का उद्घोष करते हैं। यह दर्शन हमें कर्नाटक में भी हुआ, जो संयुक्त विश्व बनाने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है। हमारा यह विचार वहाँ के लोगों को बहुत पसन्द आया। तभी हमें 'जय जगत्' का नारा सूझा। फिर तो वहाँ के बच्चे-बच्चे 'जय जगत्' बोलने लगे। अब हम यहाँ राजस्थान में आये हैं, तब भी गाँव-गाँव के लोग हमें अभिवादन करने के लिए 'जय जगत्, जय जगत्' ही बोलते हैं। यह कोई छोटी बात नहीं है। आजादी के बाद हम दस-ग्यारह वर्षों में जय हिन्द से जय जगत् तक पहुँच गये हैं। कुल दुनिया में आज जो एक विचार, एक संकल्प काम कर रहा है, वह सारी दुनिया को एक करके ही रहेगा। अब राष्ट्र-राष्ट्र के भेद टूट जायँगे, नहीं रहेंगे। विज्ञान का बल हमारे विचारों के पीछे-पीछे है।

इन दिनों मैं जितना विज्ञान का बल महसूस करता हूँ, उतना इसके पहले कभी नहीं किया था। हमारे पीछे आत्मज्ञान का जितना बल है, उतना ही विज्ञान का भी बल है। विज्ञान संकुचित मनोवृत्ति

को नहीं रहने देगा। वह इसके खिलाफ है। वह आवाहन कर रहा है कि मानव ! तुम एक हो जाओ या मिट जाओ। मैं दोनों के लिए तुम्हारी मदद करना चाहता हूँ। अगर तुम मिटना चाहते हो, तो तुम्हें मिटा देने की शक्ति भी मेरे पास है। अगर तुम व्यापक बनना चाहते हो, तो उसके लिए भी मैं मदद दे सकता हूँ। इस दृष्टि से हम देखेंगे, तो हमें कुछ सूझेगा और हम एक बनने तथा व्यापक बनने के लिए भूदान, ग्रामदान के असाधारण विचार को समझेंगे।

विश्व-मानवता की दृष्टि

आस्ट्रेलिया से एक भाई हमसे मिलने के लिए आये थे। उन्होंने पूछा कि 'आस्ट्रेलिया के लिए भूदान का क्या संदेश है ?' मैंने कहा : 'चीन और जापान के लोगों को यह आवाहन करो कि भाइयो, आप लोग हमारे देश में आइये, हम आपका स्वागत करते हैं। यह भूमि आपका स्वागत करती है। यहाँ ज्यादा भूमि पड़ी है, इसलिए आप यहाँ खुशी से आइये। यही भूदान का, विश्व-मानवता का संदेश है।' भूदान विश्व-मानव बनाना चाहता है। अब वे दिन लद गये, जब हम अपने-अपने देश के बारे में अभिमान रखते थे और कहते थे कि 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।' क्यों ? क्योंकि हमारा है। यह हमारा नहीं होता, तो हम इसे 'सारे जहाँ से अच्छा' न कहते। यही हम जगह-जगह देखते हैं। फ्रेंच का हमने एक राष्ट्रीय गीत पढ़ा। फ्रेंच लोग अपने देश का गौरव गाते हैं, तो उस गीत में इंग्लैण्ड, हिन्दुस्तान आदि दूसरे देशों की न्यूनता बतलाते हैं। वे कहते हैं कि हमारे देश में ऐसी-

ऐसी कमियाँ नहीं हैं, जैसी इंग्लैण्ड में या हिन्दुस्तान में हैं। मैं देखने लगा कि हिन्दुस्तान की कौन-सी कमियाँ उन्होंने बतायी हैं, जो फ्रांस में नहीं हैं ? उसमें लिखा है—हमारे देश में हिन्दुस्तान जैसे साँप नहीं हैं। खैर, इस तरह पहले अपने देश का गौरव तथा दूसरे देशों की कुछ न्यूनताएँ प्रदर्शित करने में लज्जत और शायद इज्जत भी मालूम होती थी, लेकिन आज वह नहीं मालूम होती। यह अपना एक सार्वराष्ट्रीय आन्दोलन है। इसी पृष्ठभूमि पर हमें काम करना है।

सर्वोदयनगर (अजमेर)
२७-२-'५९

यह ठीक है कि खाना-पीना न मिले, तो बेचैनी रहती है। इसलिए शरीर को कम-से-कम जितना भोग जरूरी है, उतना मिलना चाहिए। लेकिन उतने से इन्सान के दिल को इत्मीनान, संतोष, तसल्ली, अन्तःसमाधान का अनुभव नहीं होता। भूख, प्यास आदि प्राणी के सामान्य लक्षण मनुष्य में हैं, फिर भी मनुष्य सिर्फ प्राणी नहीं है। जिसमें प्राण मुख्य वस्तु है, वह प्राणी कहलाता है– मनुष्य की मुख्य वस्तु प्राण नहीं है। मनुष्य का मतलब है मनन करनेवाला, विचार करनेवाला। यद्यपि साँस चलती है या नहीं, इसी पर से यह पहचाना जाता है कि मनुष्य जिन्दा है या मरा है। लेकिन उस पर से भी इतना ही मालूम होता है कि प्राणी के नाते वह जिंदा है या मरा है। इन्सान के नाते वह जिन्दा भी हो सकता है और नहीं भी। किसीकी नाक से साँस न चलती हो, तो माना जायगा कि प्राणी के नाते वह मर गया। फिर भी संभव है कि मनुष्य के नाते वह जिन्दा हो। कई महापुरुष ऐसे हैं, जो प्राणी के नाते मर गये हैं, लेकिन मनुष्य के नाते आज भी जिन्दा हैं। आज जो मनुष्य जीवित हैं, उनमें सभी मनुष्य के नाते जिंदा हैं, ऐसा नहीं कहा जायगा।

वे जिन्दे हैं !

सवाल है कि लोग जपुजी, रामायण वगैरह किताबें क्यों पढ़ते हैं ? जिन्होंने ये किताबें लिखी हैं, वे क्या आज मौजूद हैं ?

तुलसीदास ४०० साल पहले हुए थे और गुरु नानक करीब ५०० साल पहले। इतने पुराने जमाने के पुरुषों की किताबें लोग इसीलिए पढ़ते हैं कि वे आज भी जिंदा हैं, मरे नहीं। देह से मरे हैं, फिर भी जिंदा हैं। उन्होंने एक ऐसी चीज दी है, जो समाज को कायम के लिए मदद करेगी।

महापुरुष मरते हैं, तो उनकी आत्मा व्यापक बनती है और सहस्र शरीरों में जाकर प्रेरणा देती है। वे कोई ग्रंथ लिखें या न लिखें, तो भी उनकी आत्माएँ प्रेरणा देती हैं। तुलसीदासजी ने और गुरु नानक ने ग्रंथ लिखे, इसलिए वे जिंदा हैं, ऐसी बात नहीं। जिन्होंने ग्रन्थ नहीं लिखे, ऐसे महापुरुषों की आत्मा भी उनका शरीर छूटने पर अनेक शरीरों में घुसकर मनुष्यों को हिलाती है, डुलाती है, घुमाती है, बेचैन करती है और यह खयाल पैदा करती है कि क्या खाने-पीने से और बच्चे पैदा करने से मनुष्य को तसल्ली होगी?

'मनुष्य' की विशेषता

हमारी एक लड़की हमसे कहती थी कि कश्मीर में आप उर्दू बोलने की कोशिश करते हैं, लेकिन 'मनुष्य' शब्द को छोड़ते नहीं हैं। यह 'मनुष्य' शब्द हिन्दी या उर्दू में इस्तेमाल नहीं किया जाता। मैं कहना यह चाहता हूँ कि मनुष्य में जो खूबी, विशेषता है, वह 'मनुष्य' शब्द ही बताता है। मनुष्य याने मनन करनेवाला, सोचनेवाला। खाना-पीना, भोग भोगना, बच्चे पैदा करना, बीमार पड़ना और मर जाना तो प्राणीमात्र के साथ जुड़ी हुई चीज है, इसलिए मनुष्य के साथ भी जुड़ी है; लेकिन वह मनुष्य की विशेषता नहीं है। इतने से मनुष्य की कभी तसल्ली नहीं हो

सकती। जिसके घर में खाने की चीजें पड़ी हैं, वह भी एकादशी या मुहर्रम के रोज फाका करता है। क्या आपने कोई जानवर देखा है, जो एकादशी के दिन फाका करता है? ऐसी बात मनुष्य ही करता है। फाका करने, त्याग करने, दूसरे के लिए कुछ काम करने में उसे तसल्ली मालूम होती है। मनुष्य फाँसी के तख्ते पर भी खुशी से चढ़ जाता है। 'दुनिया की सेवा में मैं मर रहा हूँ', यों सोचकर खुश होता है। कितने ही फकीर घर छोड़कर घूमते हैं। क्या घूमनेवाले फकीर को और जेल जानेवाले कार्यकर्ता को कोई तकलीफ नहीं होती? फिर भी उनके अन्तःकरण में समाधान रहता है। आपने ऐसा कौनसा जानवर देखा, जिसे तकलीफ में भी समाधान मालूम होता हो? 'मनुष्य' शब्द में यह जो सारी खूबी है, उसीके कारण मैं 'मनुष्य' शब्द नहीं छोड़ता।

हम चोला नहीं हैं

हमें समझना चाहिए कि हम मनुष्य हैं याने पशु या प्राणी नहीं हैं। हमें सोचना चाहिए कि हमने यह चोला क्यों पहना है? हम चोला नहीं हैं, बल्कि हमने किसी उपयोग के लिए यह चोला पहना है। हमारे पास सूत कातने के लिए चरखा है, उसे दो बूँद तेल देना पड़ता है। लेकिन चरखे का काम तेल खाना नहीं है, उसका काम है सूत कातना। चरखे को तेल देना पड़ता है, इसलिए हम थोड़ा-सा देते हैं। इसी तरह हमने मानव-देह रोटी खाने के लिए नहीं धारण किया है। इस चोले का कोई उद्देश्य, प्रयोजन, मकसद है। क्या इस मकसद से हमने कोई काम किया है? अगर नहीं किया हो, तो कुछ नहीं किया, ऐसा जवाब देना पड़ेगा।

जानवरों की बुराई करने की ताकत महदूद (सीमित) है और उनकी भलाई करने की ताकत भी महदूद है। लेकिन इन्सान की भलाई या बुराई की ताकत महदूद नहीं है। वह चाहे जितनी भलाई या बुराई कर सकता है। कोई भी गाय गोश्त नहीं खा सकती, वह पाप नहीं करती। पाप करने की शक्ति उसमें नहीं है। कोई भी शेर फलाहार नहीं करेगा। उसमें पुण्य करने की शक्ति नहीं है। लेकिन मनुष्य फलाहार भी करेगा, गोश्त भी खायेगा और दूसरों को खिलाकर खुद फाका भी करेगा। वह बुरे-से-बुरा काम भी कर सकता है और अच्छे-से-अच्छा काम भी कर सकता है। वह बुरा भी बनेगा, तो इतना हद दर्जे का बुरा बनेगा कि बुरा जानवर भी उसके सामने भला मालूम होगा और वह अच्छा बनेगा, तो इतना अच्छा बनेगा कि देवता को भी लज्जित कर देगा। देवता भी उसके सामने झुक जायँगे।

'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः' पर अमल करें

मैं चाहता हूँ कि आप सब सोचें कि मनुष्य का जीवन किस-लिए है। हमारे पूर्वजों ने एक छोटे से जुमले में इन्सान का कर्तव्य बताया है। **'त्यक्तेन भुंजीथाः'** इस छोटे-से वाक्य में इतना गहरा अर्थ भरा है कि ऐसा वाक्य शायद ही कहीं मिले। इसमें यह कहा गया है कि त्याग करके, त्यागपूर्वक भोग कर। खूब त्याग कर, फिर थोड़ा-सा भोग भोग ले, फिर खूब त्याग कर, फिर थोड़ा भोग ले। इस तरह इधर और उधर खूब त्याग और बीच में थोड़ा सा भोग। चरखे से इधर सुन्दर कताई कर लो, उधर बीच में दो बूँद तेल देकर फिर से सुन्दर कताई कर लो। दो त्यागों के बीच एक छोटा-सा भोग, यह एक मंत्र हमारे पूर्वजों ने हमारे जीवन के लिए

दिया है। 'त्यक्तेन भुंजीथाः' यह चीज लोग समझे नहीं हैं, ऐसी बात नहीं है। लेकिन जीवन में इस पर अमल नहीं हो रहा है। जवानी जा रही है, बुढ़ापा छा रहा है, मृत्यु आ रही है; लेकिन मनुष्य कर्तव्य को दूर ढकेलता जाता है। इसलिए मनुष्य की विशेषता क्या है, यह सोचकर अपने जीवन में त्याग लाने की कोशिश करनी चाहिए।

सांबा (जम्मू-कश्मीर)
१५-९-'५९

जम्मू के लोगों से हमने कहा कि तुम गर्म मुल्क में रहते हो, तो गर्म मिजाज मत रखो। तुम इधर से कश्मीर और उधर से हिमाचल प्रदेश, दो ठंडे प्रदेशों से जुड़े हो। यहाँ झेलम, चिनाब और रावी जैसी बड़ी नदियाँ बहती हैं। कभी मिजाज गर्म हो जाय, तो नदी में जाकर ठंडे पानी से नहा लो। हिन्दुस्तान के साथ तुम्हारा जो प्यार है, वह कायम रहे और बढ़े, यह मैं चाहता हूँ। लेकिन हिन्दुस्तान और दुनिया में कोई फर्क मत करो। जैसे यहाँ हिन्दुओं के लिए अमरनाथ का मंदिर है, वैसे ही अजमेर में मुसलमानों के लिए दरगाह-शरीफ है। बौद्धों के लिए बोधगया और सारनाथ हैं, तो ईसाइयों के लिए केरल में सेंट टॉमस का मौंट है। ईसामसीह के पहले शिष्यों में से एक शिष्य टॉमस हिन्दुस्तान में आया था और यहीं मरा। इस तरह हिन्दुस्तान में मुख्तलिफ जमातें रही हैं, इसलिए हिन्दुस्तान पर प्यार करने का मतलब है दुनिया पर प्यार करना। हिन्दुस्तान थोड़े में दुनिया ही है।

चीनवाले समझें

दस हजार साल का पुराना इतिहास हमारे पीछे है। यहाँ सैकड़ों जमातें आयीं और अब भी आ रही हैं। अभी आपने देखा ही कि तिब्बत से लोग डर के मारे भागे, तो उन्हें हिन्दुस्तान में पनाह मिली। उनकी सियासत से हमें कोई ताल्लुक नहीं, लेकिन वे मारे जा रहे थे, भाग रहे थे और पनाह चाहते थे, तो हमने पनाह

दी। यह चीज चीनवालों को ठीक नहीं लगी। लेकिन मैं चीनवालों से कहना चाहता हूँ कि मेरे देश की इज्जत इसके साथ जुड़ी है। यह मेरा देश वह देश है, जिसने गौतम बुद्ध को जन्म दिया। यह देश किसीसे दुश्मनी करनेवाला नहीं है। इसलिए चीनवालों के साथ इसका वही प्रेम रहेगा, जो पुराने जमाने से चला आ रहा है। लेकिन हम तिब्बत के लोगों को पनाह नहीं देते, तो हम इन्सानियत को खोये हुए साबित होते।

पुराने जमाने में यहाँ ईरान से पारसी लोग भागकर आये। करीब १३ सौ साल पहले की बात है। वे बम्बई के किनारे उतरे और उन्हें यहाँ पनाह मिली। आज दुनिया में पारसी करीब एक लाख होंगे और वे हिन्दुस्तान में हैं। उनका एक मजहब है, जिसे जरथुस्त कहते हैं। 'भारत' का मतलब ही है सबका भरण करनेवाला देश। इसलिए इस देश के दरवाजे सबके लिए खुले हैं। मैं चीनवालों को यकीन दिलाना चाहता हूँ कि गौतम बुद्ध का पैगाम उठाने के लिए कूवत के साथ कोई देश राजी हो, तो हिन्दुस्तान राजी है, और कोई देश राजी हो या न हो। गौतम बुद्ध का पैगाम हिन्दुस्तान ने जितना माना, शायद ही किसी देश ने माना हो। अहिंसा की बात हिन्दुस्तान में जितनी पनपी, उतनी शायद ही दूसरे किसी देश में पनपी होगी। यह बात यहाँ के लोगों के खून में जितनी गहरी पैठी है, उतनी दूसरे देश में नहीं दिखायी देती। हमने बुद्ध-धर्म को यहाँ से बिदा नहीं किया, बल्कि यहाँ का शान्ति का पैगाम पहुँचाने के लिए बाहर भेजा।

मैं फक्र के साथ कहना चाहता हूँ कि यहाँ से बुद्ध भगवान् की नसीहत लेकर जो मिशनरी बाहर गये, वे फौज लेकर नहीं गये।

वे तिब्बत, चीन, जापान, हिन्दएशिया, मंगोलिया, लंका, स्याम, बर्मा वगैरह देशों में गये, तो उन्होंने वहाँ अपनी हुकूमत कायम नहीं की, बल्कि वे वहाँ इल्म और प्यार लेकर गये। इसी तरह से चीन से यहाँ यू-एन-त्संग जैसे बड़े-बड़े यात्री आये। इसलिए चीनवालों के साथ हमारे ताल्लुक कभी नहीं बिगड़ सकते।

सर्वोदय का मकसद : बीच की दीवालें तोड़ना

भारत अन्तर्राष्ट्रीय राष्ट्र है, मामूली राष्ट्र नहीं। इसलिए हम दस साल पहले 'जय हिंद' कहते थे, तो गलत नहीं था। लेकिन दस साल में हम इतने आगे बढ़े कि आज यहाँ का बच्चा-बच्चा 'जय जगत्' बोलने लगा है। यूरोप के लोग जब इस बात को सुनते हैं, तो उन्हें खुशी और ताज्जुब मालूम होता है कि हिन्दुस्तान के बच्चे किस तरह यह वसी खयाल कबूल कर सकते हैं! मैं कहना चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान के बच्चे 'जय जगत्' इसीलिए कबूल करते हैं कि ऋषि-मुनियों का, नबीयों का पैगाम यहाँ की हवा में फैला है। हिन्दुस्तान का बच्चा छोटी बात मुश्किल से समझ सकता है। 'मैं दूसरे देश से अलग हूँ', इसे वह नहीं समझ सकता। 'मैं कुल दुनिया का हूँ और दुनिया हमारी है', इस बात को आसानी से समझ सकता है। सर्वोदय का मकसद यही है कि वह देश-देश के बीच जो दीवालें खड़ी की गयी हैं, उन्हें तोड़ना चाहता है। जैसे आज हम हिन्दुस्तान के एक सूबे से दूसरे सूबे में जा-आ सकते हैं, प्यार से कहीं भी रह सकते हैं, तिजारत कर सकते हैं, दर्शन के लिए, इल्म पाने के लिए जा सकते हैं, वैसे ही दुनिया में इन्सान कहीं भी जा-आ सकता है, यही हमें करना है। जब तक यह नहीं होगा, तब तक सर्वोदय माननेवाले लोग चैन नहीं पा

सकते। इसलिए 'जय हिन्द' अच्छा ही विचार था, उसमें कोई कौमी खयाल नहीं था। फिर भी देखते-देखते हम 'जय हिन्द' से 'जय जगत्' तक पहुँच गये और अभी भाई बख्शी रशीद ने अपनी तकरीर 'जय जगत्' कहकर शुरू की, इतनी वह चीज फित्रती (स्वाभाविक) है। बीच में अंग्रेजों के राज में उन्होंने कौमों के बीच झगड़े का जहर फैलाया, 'विभाजन और शासन' की नीति चलायी, इससे हमारे दिमाग बिगड़ गये, लेकिन अब हमारी असली चीज बाहर आ रही है और 'जय जगत्' का संदेश हिन्दुस्तान कबूल कर रहा है।

जय जगत् 'नारा' नहीं, मंत्र

'जय जगत्' यह कोई नारा नहीं है। नारे एक-दूसरे के साथ टकराते हैं। इसलिए यह नारा नहीं, बल्कि अरबी में जिसे 'कौल' कहते हैं या संस्कृत में 'मन्त्र' कहते हैं, वह है। जैसे गायत्री-मन्त्र, अलाफातिहा मन्त्र, बिस्मिल्ला हि रहमान, निर्रहीम यह मन्त्र है, ऐसे ही 'जय जगत्' मन्त्र है, 'कौल' है। यह मन्त्र हिन्दुस्तान का बच्चा-बच्चा बोल रहा है।

जम्मू-कश्मीर

२०-९-'५९

हमारे मित्र दुनिया में सब दूर फैले हैं। कुछ मित्र गाँव-गाँव घूमते और भूदान, ग्रामदान, सर्वोदय-पात्र, शांति-सेना का विचार लोगों को समझाते हैं, तो कुछ खादी, ग्रामोद्योग के काम में लगे हैं। कुछ ऐसे भी हैं, जो सरकार के अन्दर गये हैं और वहाँ सर्वोदय-विचार जितना पैठा सकते हैं, पैठाने की कोशिश कर रहे हैं। कुछ मित्र सरकारी नौकरी में हैं। वे कम्युनिटी प्रोजेक्ट वगैरह में काम करते हैं और कोशिश करते हैं कि सर्वोदय का काम लोगों में प्रिय हो। हमारे कुछ मित्र मुस्तलिफ सियासी पार्टियों में हैं और वहाँ भी अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार सर्वोदय की प्रतिष्ठा के लिए जितना बन सकता है, करते हैं। इस तरह हमारे मित्र सर्वत्र फैले हैं। किसान और मजदूर तो हमारे मित्र हैं ही।

सर्वोदय के बगैर चारा नहीं

अब आप देखेंगे, अभी क्रुश्चेव अमेरिका में गया है और ऐसी बात बोलता है, जो हम सर्वोदय के प्लेटफार्म पर बोलते हैं। मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि दुनिया को या तो सर्वोदय कबूल करना है या सर्वनाश। इन दो के सिवा तीसरा रास्ता नहीं है। यह लाजिमी है कि साइन्स के जमाने में दुनिया सर्वोदय को ही कबूल करे। इसमें देर-अबेर हो, यह अलग बात है। सर्वोदय का रूप अलग-अलग देश में, समाजों में और परिस्थितियों में अलग-अलग होगा। हिंदुस्तान में सर्वोदय-विचार माननेवाले

जिन औजारों से उत्पादन करेंगे, उन्हीं औजारों से सर्वोदय के विचारक अमेरिका में काम न करेंगे। वहाँ दूसरे औजार इस्तेमाल किये जायँगे। इसलिए औजार तो अलग-अलग इस्तेमाल होंगे, जिन्दगी का स्वरूप अलग-अलग होगा, लेकिन सर्वोदय का यह मूलभूत विचार सभी में कायम रहेगा कि 'भगवान् ने हमें जो चीजें दी हैं—जमीन, दौलत, जिस्मानी ताकत, अक्ल और अन्य शक्तियाँ भी जिसमें शामिल हैं—वे सब हमारे लिए नहीं, सबके लिए हैं। हमारे पास वह एक धरोहर है, हम उसके ट्रस्टी हैं, उन चीजों का उपयोग हमें दुनिया के लिए करना है।' इस तरह दुनिया को अब सर्वोदय के बगैर चारा नहीं है।

नित-नया रूप : सर्वोदय

कुछ लोगों का खयाल है कि भूदान, सर्वोदय का विचार चार-पाँच साल तक कुछ चला, लेकिन अब मन्द पड़ा है। मेरा खयाल उससे उलटा है। मैं मानता हूँ कि हिंदुस्तान में सर्वोदय का चिन्तन करनेवाले गहरे जा रहे हैं और बाहर वह विचार व्यापक हो रहा है। पहले वह हिंदुस्तान में व्यापक पैमाने पर फैलता था। जिस तरह वह हिन्दुस्तान में फैला, उसी तरह आज दुनिया में फैल रहा है। रूस, अमेरिका, इंग्लैंड वगैरह सब देश उसे पकड़ लेंगे और हम हिंदुस्तान में और गहरे चले जायँगे। हम उनसे कहेंगे कि हमारा छोड़ा हुआ विचार आपने लिया था, अब और नया विचार लीजिये। जिन्होंने यह माना कि हम थक गये हैं, सर्वोदय की, ब्रह्मविद्या की और साइन्स की यह खूबी है कि उसमें नयी-नयी ईजादें होती रहती हैं। ये तीनों नित-नयी बनती हैं। दस साल पहले उनका जो रूप था, वह आज नहीं है। चार महीने

पहले मैं जो बोला था, वह अब कश्मीर-यात्रा के बाद नहीं बोलूँगा। नित-नया बोलूँगा। यह नित-नया रूप धारण करने की शक्ति सर्वोदय में है। उसके दो रूप हैं : ब्रह्मविद्या और साइन्स। हिरोशिमा पर जो एटम बम गिरा था, उससे हजारगुनी ताकत-वाला बम अब बना है और बम रखनेवाले आज अमेरिका में इकट्ठा हो रहे हैं। क्रुश्चेव कह रहा है कि कुल-के-कुल हथियार डुबो दिये जायँ। बिल्कुल ठीक यही, समझ लो कि विनोबा बोल रहा है। याने पूरा-का-पूरा डुबोने की बात जैसे हम करते हैं, वैसे ही उसने की है। साथ-साथ ऐसा भी कहा है कि वैसा न हो, तो और भी बातें की जायँ। आज उसके मुँह से वह चीज निकली है। कल उसके हाथ से वह काम होगा। जो चीज आज दिमाग में आती है, वह कल अमल में आती है। पहले संकल्प होता है, फिर वाणी के जरिये प्रकट होता है और हाथ से काम होता है। आज तोताराम बोल रहा है सीता-राम, सीता-राम। आज तो वह तोताराम है, लेकिन कल करनेवाला 'राम' होगा। इसलिए अगर कोई मायूस हुआ हो कि सर्वोदय का काम तो अब हो चुका है, अब पंचवर्षीय योजना ही चलानी है, तो इसका मानी यही है कि वह सर्वोदय को ठीक से समझा नहीं।

सुजानपुर (पंजाब)
२१-९-'५९

'जय जगत्' और भारत-प्रेम अविरुद्ध : १८ :

मैं कहना चाहता हूँ कि यह कोई आकस्मिक घटना नहीं कि हिन्दुस्तान में १४ विकसित भाषाएँ मौजूद हैं। अभी आपने गीत सुना ही था : 'भारतेर महामानवेर सागरतीरे'। भारत के इस समुद्र में दुनियाभर की संस्कार-नदियाँ मिली हैं। इसलिए यहाँ के प्राचीनतम ग्रन्थ में एक नवीनतम शब्द हमें मिल गया, 'विश्व मानुषः'। ऋग्वेद में यह शब्द आया है, जो आज के हमारे कर्तव्य को बहुत अच्छी तरह प्रकट करता है। यह शब्द यहाँ की संस्कृति को इसीलिए सूझा कि इस संस्कृति में निरंतर यही खयाल किया गया है कि हम कोई संकुचित नहीं, परम व्यापक हैं। इसीको 'दर्शन' कहते हैं। फिर उसके अनुसार आचरण और जीवन बनाने के लिए चाहे समय लगे, चाहे युग बीत जाय, लेकिन दर्शन तो दर्शन ही है। इसलिए भारत के लिए जो प्रेम मैं अपने में पाता हूँ, बावजूद इसके कि 'जय जगत्' का मन्त्र मैं बोलता हूँ, उस प्रेम का 'जय जगत्' के साथ मैं कोई विरोध नहीं देखता।

तुलसीदासजी ने एक पद्य लिखा है, जो मुझे इस पदयात्रा में बार-बार याद आता है : "**भलि भारत भूमि, भले कुल जन्म, समाज शरीर भलो लहिकै। करषा तजिकै परुषा, बरषा हिममारुत धाम सदा सहिकै। जो भजे भगवान सयान सोई। तुलसी हठ चातक ज्यों गहिकै।**" धन्य है यह भारत-भूमि, धन्य है यह मानव का कुल, जिसमें हमें जन्म मिला है। हमें समाज भी बहुत

अच्छा मिला है और शरीर भी अच्छा मिला है, जिसमें अष्टधा प्रकृति चरितार्थ हुई है। कठोर वाणी छोड़कर बारिश, ठंड, धूप, हवा—सब सहन करते हुए जो भगवान् की भक्ति करता है, वही सयाना है। अक्सर ठंड, बारिश आदि सहन करनेवालों के चित्त में बहुत दफा अहंकार, वाणी की कठोरता, क्रोध आदि होते हैं। उन सबको छोड़कर नम्र भाव से बिना अहंकार के भगवान् की भक्ति करनेवाला सयाना है। तुलसीदासजी कहते हैं कि जैसे चातक ने हठ पकड़ लिया है, उस तरह आग्रह के साथ इस तपस्या में, हरि-भक्ति में चिपके रहकर जिस किसीने अपना जीवन बिताया, वह धन्य है। **"नतु और सबै विषबीज बये। हर हाटक कामदुहा नहिकै।"** नहीं तो फिर कामधेनु को नत्थी डालकर और सोने का हल बनाकर विष-बीज ही बोया, यही कहा जायगा।

इसलिए जय जगत् के साथ भारत-भूमि का जो प्रेम महा-पुरुषों ने हमें यहाँ सिखाया, उसका पूरा मेल है, दोनों में किसी प्रकार का कोई विरोध नहीं है। बल्कि भारत-भूमि कुल जगत् का एक छोटा-सा नमूना है। एक छोटे त्रिकोण को लेकर, जिसे कोई उपाधि न हो, हम एक सिद्धान्त सिद्ध करते हैं, तो फिर वही सिद्धान्त सिद्ध करने के लिए कोई बड़ा त्रिकोण लेने की जरूरत नहीं रहती। इसी तरह भारत में एक चीज हम सिद्ध करते हैं, तो वह चीज कुल दुनिया में सिद्ध होती है, ऐसी श्रद्धा रखकर आप लोगों की सेवा में आठ साल से घूम रहा हूँ।

अमृतसर
१२-११-'५९

हिन्दुस्तान की संस्कृति : शान्ति : १९ :

दिसम्बर के दूसरे सप्ताह में अपने देश में अमेरिका के प्रेसीडेण्ट आइसन हॉवर, जिन्हें लोग आईक कहते हैं, आये थे। उनके स्वागत के लिए ८-१० लाख लोग जमा हुए। कुम्भ-मेले का छोटा-सा दृश्य था। लोगों ने इतनी असाधारण श्रद्धा, इतनी भक्ति, इतनी उत्सुकता क्यों बतायी, यह सोचने की बात है। अमेरिका के प्रेसीडेण्ट याने दुनिया के एक सबसे बड़े शक्तिशाली देश के प्रतिनिधि, इस नाते लोगों ने उनका इतना बड़ा स्वागत किया हो, तो वे उस गौरव के पात्र ही थे। लेकिन जो इतनी सारी जनता उमड़ पड़ी, वह इसलिए नहीं कि वे बहुत बड़े देश के प्रतिनिधि हैं, बल्कि इसीलिए कि आईक ने इन दिनों शांति का झंडा उठाया है। शान्ति-दूत के नाते उन्होंने अभी क्रुश्चेव से बातें कीं और उसी नाते वे दुनिया में घूम रहे हैं।

इस देश में शान्ति की भावना नयी नहीं है। हमारे देश में "शान्तिः शान्तिः शान्तिः" की घोषणा हम करते हैं। दस हजार साल से, जहाँ तक हम इतिहास जानते हैं, यह मन्त्रघोष आज तक जारी है।

हिन्दुस्तान में आनेवाली मुख्तलिफ जमातें

हिन्दुस्तान ऐसा देश है, जहाँ मुख्तलिफ कौमें आयीं और उनका खुले दिल से स्वागत किया गया। लोगों का यह खयाल गलत है कि हिन्दुस्तान में जितनी कौमें आयीं, वे हमलावर होकर

आयीं। कुछ तो हमलावर होकर आयीं, लेकिन बहुत-सी आश्रित बनकर आयी थीं। केरल में ईसा की मृत्यु के बाद सत्तर-अस्सी साल के अन्दर-अन्दर सेंट टॉमस आये थे। ईसाई-धर्म हिन्दुस्तान में पहले आया। उसके तीन-चार सौ साल बाद यूरोप में फैला। सेंट टॉमस का केरल के लोगों ने बहुत प्यार से स्वागत किया। उनको बहुत प्यार से रखा। वैसे ही पारसी कौम यहाँ आयी। किसी तरह की तकलीफ हमने उनको नहीं दी। इसी तरह यहाँ यहूदी लोग आये। 'हूदा' याने जिनको हिदायत मिल चुकी है या जिनको बोध प्राप्त हुआ है। उनको अरबी-फारसी में हूदा कहते हैं। जैसे अपने यहाँ बुद्ध हो गये। वे लोग बम्बई के किनारे बेन-इजराइल जमात के नाम से बसे हैं। वैसे ही यहाँ ग्रीक आये, जिनको हम 'यवन' कहते हैं। 'यवन' याने 'आयोनियन'। मुगल आये, चीनी आये, तारीर आये। कौन नहीं आये, यही सवाल है।

जातिभेद का रहस्य

इतनी सारी अलग-अलग कौमें यहाँ आयीं। हमारे यहाँ जो अलग-अलग जातियाँ बनीं, वे भी 'जीओ और जीने दो' (लिव एण्ड लेट लिव) के लिए बनीं। आज उनका रूप बिगड़ गया है। अब उनको खतम करना जरूरी है। लेकिन जब जातियाँ बनीं, उस वक्त हरएक कौम का रहन-सहन, खाना-पीना, संस्कार अलग-अलग थे। फिर भी उनको समुद्र में ढकेल देने की बजाय यहीं प्रेम से रखा। इसलिए यहाँ जो जाति-भेद बना, वह भेद-भावना के कारण नहीं बना, प्रेम के कारण बना था। सह-जीवन के लिए बना था। लेकिन कभी-कभी सह-जीवन भी तकलीफ देने लगता है। जाति-

भेद भी आज तकलीफ दे रहा है। इसलिए उसको मिटाना जरूरी है।

भारत का वैशिष्ट्य

दूसरी बात यह है कि सारी दुनिया के इतिहास में कहीं नहीं दिखाई देती, वैसी घटना यहाँ हुई है। यहाँ के लोग जब अपने ऐश्वर्य के शिखर पर थे, तब चाहे वह समुद्रगुप्त का जमाना रहा हो, सम्राट् अशोक का या श्री हर्ष का जमाना रहा हो, इस समाज के महान् नेता पैदा हुए। लेकिन उन्होंने हिन्दुस्तान के किसी देश पर कभी हमला नहीं किया। यह घटना इत्तफाक से नहीं हुई। इसमें हिन्दुस्तान का स्वभाव छिपा है। यह 'हिन्दुस्तान' यदि आधुनिक भाषा में कहें, तो अन्तर्राष्ट्रीय (इंटरनेशनल) देश है। यह अपने में एक व्यापक विश्व ही है। यहाँ के लोगों के पास ऐसे कोई साधन नहीं थे, जिससे दूसरे देशों के साथ सम्बन्ध कराते। तब भी यहाँ से भाषा निकली–'विश्वमानुष'। उस जमाने में भी 'विश्व' से कम शब्द इस्तेमाल नहीं किया गया। **"विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्"**–हमारे गाँव परिपुष्ट विश्व बनें।

और एक बड़ी बात यहाँ यह हुई है कि दुनिया में यही देश है, जहाँ के लोगों ने बहुत पहले मांसाहार-परित्याग का व्यापक प्रयोग किया। जब कि यूरोप, अमेरिका में अभी-अभी उसका आरम्भ हो रहा है।

यह सारा मैंने इसलिए कहा कि 'आईक' का स्वागत यहाँ के लोगों ने इसलिए किया कि हिन्दुस्तान की सभ्यता ने जो मंत्र माना, उसका उच्चारण उस भले मनुष्य ने किया। इसलिए लोगों

को लगा कि यह अपना ही आदमी है। आईक चाहते हैं, दुनिया में शस्त्र-संन्यास हो। जो अणु शस्त्र बने हैं, उन पर पाबन्दी लगे। शस्त्रास्त्र कम हों। लेकिन सोचने की बात है, यह किस तरह होगा? उसके लिए दुनिया ने एक औजार बनाया है, जिसको 'यू० एन० ओ०' संयुक्त राष्ट्र-परिषद् कहते हैं। वहाँ सब राष्ट्रों के प्रतिनिधि इकट्ठा बैठकर दुनिया के मसलों पर सोचते हैं। फिर क्या बात है कि शांति के मंत्र का अमल नहीं होता?

हिन्दुस्तान और चीन के बीच की 'अनबन'

अभी-अभी हिन्दुस्तान और चीन के बीच अनबन हुई है। मैंने जान-बूझकर अनबन कहा है। मैं नहीं मानता कि इससे ज्यादा कुछ बना है। हिमालय ने पुराने जमाने में दोनों को अलग रखा था। हम समझते थे, हिमालय हमारी रक्षा करता है। अब वह रक्षा नहीं रही। इस जमाने में किसी प्रकार के पहाड़, दीवाल, तट, किले से रक्षा होनेवाली नहीं है। इसके आगे रक्षा अन्दर से आयेगी। उसी दिशा में विज्ञान भी जोर से बढ़ रहा है। परिस्थिति में अनुकूलता हो रही है। मैंने कई बार कहा है कि एक जमाने में पहाड़, समुद्र, जड़ पदार्थ देशों को तोड़ने का काम करते थे, वे आज जोड़ने का काम करते हैं। इसलिए इसके आगे चीन और हिन्दुस्तान के बीच प्रेम होनेवाला है। उस प्रेम-संबंध के आरम्भ में अनबन हुई है। उसमें से 'अन' निकल जायगी और 'बन' ही रहेगी। याने आखिर में दोनों का बनेगा। इस बात को हम रोजमर्रा के व्यवहार में देखते हैं। हिन्दुस्तान के लोग प्रेमी हैं, स्वागत करना अच्छी तरह जानते हैं। बावजूद इसके ट्रेन में क्या होता है? अन्दर किसीको आने नहीं

देते। आप जरा अपना पुरुषार्थ दिखाकर अन्दर घुस ही जायँ, तो फिर आपको खड़ा होना पड़ता है। उतने में गाड़ी खुलती है। फिर कोई भला मनुष्य थोड़ी जगह देता है और कहता है, आओ भाई, बैठो। यह तो रोजमर्रा की बात है। आरम्भ में ऐसा थोड़ा झगड़ा होता है। उसीमें से प्रेम होता है। मैं तो जानता नहीं, पर मेरा खयाल है कि माता के स्तन को बच्चा जब प्रथम स्पर्श करता है, तब थोड़ी तकलीफ तो होती ही होगी। लेकिन उसीसे प्यार बनता है। इसलिए चीन और भारत की इस अनबन को मैं ज्यादा महत्त्व नहीं देता।

मंत्र का मनन हो

आईक ने शान्ति की घोषणा तो की, पर शान्ति में एक कील ठोक दी। शान्ति में रोड़ा डाल दिया। 'यू० एन० ओ०' में चीन को दाखिल नहीं होने दिया। हिन्दुस्तान ने तो चीन का समर्थन किया है। अब इंग्लैण्ड भी करने लगा है। लेकिन अमेरिका अब भी खिलाफ है। ताज्जुब है कि दुनिया के लोग जहाँ इकट्ठा बैठकर शान्ति के बारे में सोचते हैं, वहाँ चीन जैसे इतने बड़े देश को बैठने का मौका नहीं दिया जाता! उसको शान्ति के बारे में सोचने का मौका देने के बजाय कलह बढ़ाने का मौका दिया है! आईक ने तो शान्ति का मन्त्र पढ़ा, पर अब उसका वह मनन करेगा, ऐसी मैं आशा करता हूँ। मनन से ही मंत्र बनता है। आईक मनन नहीं करेगा, तो मंत्र ही नहीं रहेगा।

लोग कहते हैं, हिन्दुस्तान ने चीन पर उपकार किया, फिर भी चीन ने हिन्दुस्तान से झगड़ा किया। वे समझते नहीं। हमने चीन

पर कोई उपकार नहीं किया। हम अपना और दुनिया का एक कर्तव्य पूरा कर रहे हैं। मैं आशा करता हूँ, आगे इस पर विचार होगा और शान्ति की राह खुलेगी। चीन की बनिस्बत हमें अपनी नीति बदलने की कोई जरूरत नहीं है।

गांधी : एक ऐतिहासिक आवश्यकता

हिन्दुस्तान के लोग 'शान्तिः शान्ति :' कहते हैं, फिर भी उनमें भय है। इसका एक बड़ा कारण है। अंग्रेज यहाँ आये तो उन्होंने एक अद्वितीय कर्तव्य किया, जो दुनिया में किसीने किसी देश में नहीं किया था। अंग्रेजों ने यहाँ की जनता को निःशस्त्र बनाया, ताकि इस देश पर राज्य करना आसान हो। उसका एक कारण तो यह था कि किसी राजा में उतनी ताकत ही नहीं थी; और दूसरा कारण यह था कि वे प्रजा को निःशस्त्र करते और कहीं बाहर से आक्रमण होता, तो प्रजा की रक्षा करना उनके लिए कतई सम्भव नहीं था।

अंग्रेजों ने कुछ अच्छी करामातें कीं और कुछ गलत भी। यह उनकी गलत करामात थी। नतीजा यह हुआ कि जिनके हाथ से शस्त्र छीने गये, उन लोगों में कायरता आ गयी। उनको शस्त्रों के लिए आकर्षण रहा। हालाँकि उनकी इसी करामात के कारण गांधीजी का काम इस देश में हो सका। इतने बड़े प्राचीन देश को कायम के लिए गुलाम रखना नामुमकिन था। इसलिए नये शस्त्र का शोध जरूरी था। गांधीजी के मार्ग-दर्शन में हिन्दुस्तान में अहिंसा की लड़ाई चली। उस वक्त हमने टूटी-फूटी अहिंसा का पालन किया। उसके परिणामस्वरूप स्वराज्य आया। फिर हमने महसूस नहीं किया कि अहिंसा से हमने स्वराज्य हासिल

किया। इसके कारण अहिंसा का वह मजा खतम हो गया। किसी हिंसक लड़ाई में जो बुराइयाँ की जाती हैं, उससे कम बुराइयाँ हमने नहीं कीं याने हमारी अहिंसा लाचारी की अहिंसा थी, बावजूद इसके कि गांधीजी ने हमें वीरों की अहिंसा सिखाने की कोशिश की थी।

उज्ज्वल प्रसंग

आज चीन की वजह से लोग डरते हैं और कहते हैं कि हमें तैयारी करनी होगी, सेना रखनी होगी, शस्त्र तैयार करने होंगे। लेकिन पंडित नेहरू जो कहते हैं, डरो मत। लड़ाई इस तरह लड़ी नहीं जाती। आज दुनिया में जागतिक युद्ध करने की किसीकी हिम्मत नहीं है। मेरी उस शख्स के साथ पूरी सहानुभूति है। इस वक्त गांधीजी के बहुत सारे साथी भी कह रहे हैं कि देश को दूसरी नीति पर ले जाना चाहिए। पर वह शख्स कहता है, 'मैं हिन्दुस्तान की परिस्थिति अच्छी तरह जानता हूँ। यहाँ के लोगों की नब्ज पर मेरा हाथ है। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति भी मैं अच्छी तरह जानता हूँ।' मैं मानता हूँ, पंडित नेहरू के जीवन में सबसे अधिक उज्ज्वल और गौरव का यह प्रसंग है। लगता है कि गांधीजी जिन्दा हैं। पर नेहरू वर्तमान के लिए अनुकूल जागरूकता, बुद्धिमानी और कार्यदक्षता दिखा रहे हैं। अब हमें क्या करना चाहिए, इस पर हमें सोचना चाहिए।

सिरसा (पंजाब)

१६-१२-'५९

सर्वोदय तथा भूदान-साहित्य

धम्मपदं	२)	चलो, चलें मंगरौठ	।।।)
गीता-प्रवचन १।) सजिल्द	१।।)	भूदान-गंगोत्री	२।)
शिक्षण-विचार	२)	सर्वोदय-विचार	।।।)
आत्मज्ञान और विज्ञान	१)	स्थितप्रज्ञ-लक्षण	।)
सर्वोदय-विचार स्वराज्य-शास्त्र	१)	ग्रामदान क्यों ?	१।)
ग्रामदान	१)	भूदान-यज्ञ : क्या और क्यों ?	१।।)
लोकनीति	१।)	यात्रा के पथ पर	।।)
स्त्री-शक्ति	।।।)	समाजवाद से सर्वोदय की ओर	।=)
भूदान-गंगा (छह खंड)	९)	सर्वोदय का इतिहास और शास्त्र	।)
ज्ञानदेव-चिन्तनिका	१)	सर्वोदय-संयोजन	१)
शान्ति-सेना	।।)	वर्ग-संघर्ष	।।=)
कार्यकर्ता-पाथेय	।।)	शोषण-मुक्ति और नव समाज	।।=)
साहित्यिकों से	।।)	एशियाई समाजवाद	१।।)
साम्यसूत्र	।=)	लोकतांत्रिक समाजवाद	१।।)
सर्वोदय-पात्र	।)	बच्चों की कला और शिक्षा	८)
आदिवासियों से	।)	सर्वोदय की सुनो कहानी	१।)
समग्र ग्राम-सेवा की ओर (तीन खंडों में)	५।।)	किशोरलालभाई की जीवन-साधना	२)
बुनियादी शिक्षा-पद्धति	।।)	गुजरात के महाराज	२)
संपत्तिदान-यज्ञ	।।)	जाजूजी : जीवन और साधना	१।)
व्यवहार-शुद्धि	।=)	अन्तिम झाँकी	१।।)
गाँव-आन्दोलन क्यों ?	२।।)	ग्रामराज क्यों ?	।=)
गांधी-अर्थ-विचार	१)	ग्राम-स्वराज्य	।।=)
स्थायी समाज-व्यवस्था	२।।)	प्रायश्चित्त (नाटक)	।)
सर्वोदय-दर्शन	३)	चन्द्रलोक की यात्रा (नाटक)	।)
दादा की नजर से लोकनीति	।।)	एक भेंट (नाटक)	।।=)
सत्य की खोज	१।।)	प्राकृतिक चिकित्सा-विधि	१।।)
माता-पिताओं से	।=)	अहिंसात्मक प्रतिरोध	।।)
बालक सीखता कैसे है ?	।।)	गांधी : एक सामाजिक क्रांतिकारी	।=)
बोलती घटनाएँ (चार भाग)	२)	प्यारे बापू (तीन भाग)	१।=)
नक्षत्रों की छाया में	१।।)		

●

छोटी-छोटी खोजों से लेकर अब चन्द्रलोक तक पहुँचने की बात हो रही है। मनुष्य ने अब छोटा-सा चन्द्र बनाया है, जो पृथ्वी से आठ-नौ सौ मील ऊपर घूम रहा है। 'जय हिन्द' का नारा पन्द्रह वर्ष पूर्व निकला। १५ वर्षों के बाद अब हम 'जय हिन्द' से 'जय जगत्' तक पहुँच गये। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। दुनिया में विचार वेग से आगे बढ़ रहे हैं। धीरे-धीरे देशों की सरहदें भी टूटनेवाली हैं। सारा विश्व सम्मिलित परिवार बने—ऐसी भावना बढ़ रही है, तीव्र हो रही है। विशाल भावना बनती है, तो जीवन पर भी उसका परिणाम होता है।

दीनबन्धु

आठ आना